



# रहिमन-विनोद

सम्पादक

श्रीयुत प० अयोध्याप्रसाद गर्मा, 'विशारद'

प्रकाशक

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

धम सम्पत्तण  
२०००

स० १०८४ वि०

{ मूल्य ॥॥  
{ सजिल्द का १ }



## निवेदन



हीम कवि की कविता यद्यपि हिन्दी में अभी तक बहुत थोड़ी प्राप्त हुई है, परन्तु वह हिन्दी के पुराने कवियों में एक विशेष महत्व का स्थान रखती है। क्योंकि हिन्दी के पुराने मुसलमान कवियों में रहीम के दोहों का हिन्दी भाषी जनता के अन्दर जितना अधिक प्रचार है, उतना शायद अन्य किसी मुसलमान कवि की कविता का प्रचार नहीं है। पढ़े लिखे लोगों की बात तो जाने दीजिए—देहातो में, झोशडियों के रहनेवाले, देहाती निरक्षर गवॉर भी रहीम के दोहों से परिचित हैं, और गोस्वामी तुलसीदास जी के दोहों-चोपाइयों तथा गिरिधर कविरायजी की कुंडलियों की तरह रहीम के दोहों भी वे अपनी प्रति दिन की मामूली घातों में दृष्टान्त के तार पर कह दिया करते हैं। रहीम की कविता पढ़ने से ही मालूम हो जाता है कि उन्होंने अपने को पूर्णतया हिन्दू-भावों में मिलाया था। हिन्दू धर्म, हिन्दू-समाज, हिन्दू-सभ्यता को पूर्णतया उन्होंने अपने-पत्नीकृत कर लिया था। यदि ऐसा उन्होंने न किया होता, तो उनके हृदय से ऐसी हिन्दू-स्वभावोक्तियाँ कैसे निकल सकती थीं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी ने ऐसे भगवद्गुरु मुसलमान कवियों को लक्ष्य कर के ही कहा है कि “इन एक एक हरिजनन पै कोटिन हिन्दू धारिये”, और यह बिल्कुल सच है। क्योंकि मुसलमान धर्म का पालन करते हुए भी यदि कोई मुसलमान हिन्दी भाषा, हिन्दू-मन्दिरो, हिन्दू-देवी-देवताओं, हिन्दू-सभ्यता और हिन्दू-भावों में भी अपने को तल्लीन कर सकता है—इन सब को अपने ही धार्मिक भावों—यदि उनमें भी अधिक—आदर देता है, तो वह हिन्दू

जाति के लिए वन्दनीय "साधु" है। ऐसे मुसल्मान साधु कवि की स्वभावोक्तियाँ क्यो न हिन्दू हृदयों के अन्दर अपना घर करेगी !

अदुल्हमीम खानखाना मुसल्मानों राजत्वमाल में अक़री दरबार के एक बड़े राज्याधिकारी थे, परन्तु मैं उनके लिए "साधु" कहता हूँ, क्योंकि वे आजमूल के राज्याधिकारियों की तरह "अथ निज परोपेति" की भेदनीति के पक्षपाती न थे, किन्तु वे "वसुधैव कुटुम्बकम्" का आचरण करनेवाले उदारचरित पुरुष थे, और ऐसे पुरुष राज्यशासक हो, और चाहे जङ्गल में रहकर तपस्या करनेवाले हा—वे मुसल्मान हो, हिन्दू हो, अथवा और कोई तीसरे धर्म या समाज के हो—हिन्दू लोग उनको साधु ही कहकर अपनाएँगे। यही हिन्दूधर्म की व्यापक विशेषता है, जिसने खानखाना को मुग्ध कर लिया था।

उपर्युक्त कारण से ही "रहीमन विनोद" को प्रकाशित करते हुए आज हमको अत्यन्त हर्ष हो रहा है। रहीम कवि की कविता अन्यत्र भी प्रकाशित हुई है। परन्तु "हिन्दी-भाहित्य-सम्मेलन" इसको क्यों प्रकाशित कर रहा है, इसका कारण इस पुस्तक के सम्पादक प० अयोध्याप्रसादजी शर्मा के "वक्तव्य" से पाठकों को विदित हो जायगा। वास्तव में शर्माजी ने इस "विनोद" को बड़ी योग्यता के साथ सम्पादित किया है, और रहीम की कविता के विद्यार्थियों तथा परीक्षार्थियों के लिए इसमें ऐसी ऐसी सुविधाएँ कर दी हैं, जो अन्य पुस्तकों में बहुत कम पाई जाती हैं। पूर्व प्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त अपनी कुशाग्रबुद्धि और अन्वेषण-कौशल से भी पंडित अयोध्याप्रसादजी विशारद ने इसमें बहुत कुछ काम लिया है। अतएव विश्वास है कि रहीमकवि की कविताओं का यह संग्रह विद्यार्थियों तथा सर्व-साधारण कविता प्रेमियों के लिए विशेष उपयोगी और विनोद वर्द्धक होगा।

लक्ष्मीनग वाजपेयी

साहित्य मन्त्री

## वक्तव्य

सा

हित्यक्षेत्र अनुदिन वृद्धि करता जा रहा है। काशी-नागरी प्रचारिणी-सभा के हस्तालिखित ग्रंथों के खोज-कार्य ने साहित्य-संसार में हलचल सी मचा रखी है। ऐसी ऐसी बातें प्रकाश में आ रही हैं जिनसे साहित्य का इतिहास लिखने में बड़ी भारी सहायता प्राप्त होगी। इस कार्य के प्रभाव ही से हिन्दी हितैषियों की अभिरुचि अनुदिन साहित्य-क्षेत्र को सम्राट्पूर्ण बनाने की ओर चुकती जा रही है और उसी के फल-स्वरूप साहित्य के प्रत्येक अङ्ग पर ग्रंथ सम्पादित हो होकर धड़ाधड़ निकल रहे हैं। परन्तु यह निश्चित है कि जो ग्रंथ पूर्ण विवेक व विचार के साथ सम्पादित होकर हम क्षेत्र में आवेंगे वही चिरस्थायी होंगे और साहित्य के मणि-मुकुट में स्थान पायेंगे। याजारू दग से आये हुए ग्रंथ "ज्यो 'रहीम' भादो निसा, चसकि जात खचोत" की तरह भविष्य के गर्भ में अन्तर्लान हो जायेंगे। इसी विचार को सामने रखता हुआ आज मैं अपने पाठकों के सामने अद्भुतरहीमगर्भों खानखाना की प्राप्य कविता लेकर उपस्थित हो रहा हूँ। कवि के जीवन-चरित्र से पाठकों को उसकी सम्पूर्ण स्थिति का ज्ञान हो जायगा। यहाँ केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि जिस प्रकार कवि अपनी बुद्धिमत्ता से अरुंर का महामहली बन गया और अपनी वीरता से सम्पूर्ण दक्षिण भारत में धाक जमा गया उसी प्रकार वह अपनी साहित्य-विद्वता की प्रतिभा से साहित्य क्षेत्र को भी देदीप्यमान कर गया है। कवि के चुटीले गेहे, जो किमी एक ही विषय पर नहीं, किन्तु भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, श्रद्धा, नीति, प्रेम, दान और स्वाभिमान आदि भिन्न भिन्न विषयों

पर कहे गये हैं, प्रसाद गुणालकृत, वड़े ही मर्मस्पर्शी और चमत्कार-पूर्ण हैं, आर उनको शिक्षित ओर अधिक्षित सभी अपनाये हुये हैं। ऐसे दोहों की सरया यद्यपि ७०० सुनी जाती ह, परन्तु अब तक केवल २६९ ही प्राप्य हैं।

रहीम की कविता पर अब तक जो ग्रथ निकल चुके हैं वे ये हैं —

- १—रहिमन शतक—प० सूर्यनारायण दीक्षित द्वारा सम्पादित
- २—रहीम रत्नाकर—प० उमराग्रमिह त्रिपाठी द्वारा सम्पादित
- ३—रहिमन विलास—प० राधाऋण द्वारा रचित रहीम के दोहों पर कुण्डलियाँ

४—रहिमन शतक—प० नवाँत धतुर्वेदी द्वारा रचित रहीम के दोहों पर कुण्डलियाँ

५—रहिमन के दोहे\*—श्री वियोगी हरि द्वारा सम्पादित

६—रहीम—प० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा सम्पादित

७—रहिमन विलास—प० बजरत्नदास द्वारा सम्पादित

उपर्युक्त पुस्तकों में सं० ६ और ७ को छोड़कर शेष में केवल दोहे ही हैं। सबसे बड़ा संग्रह 'रहिमन विलास' है। साहित्य क्षेत्र में इस समय सं० ५, ६ और ७ के ही ग्रथ चल रहे हैं। इनमें टीका-टिप्पणी भी की गई है।

इन संग्रहों के होते हुए भी मरा विचार एक नये संग्रह के सम्पादन करने का क्यों हुआ उसके उत्तर में मैं पाठकों से यही कहूँगा कि अब तक रहीम के जो संग्रह निकले हैं उनमें पाठ बहुत गड़गड़ है। शब्द रखने में इस बात का किञ्चिन्मात्र विचार नहीं किया गया है कि उनका कुछ अर्थ हो सकता है या नहीं, शाब्दिक अर्थ और टिप्पणियों सरल दोहों की ही अधिक दी गई हैं। अन्यों को शिक्षित श्रेणी में डाल कर डाल

\* अशुद्ध होने के कारण यह संस्करण नष्ट कर दिया गया। कई वर्षों से अप्राप्य है। सं० सं० ।

मटल की गई है। शाब्दिक अर्थ और टिप्पणियाँ भी ऐसी दी गई हैं जिनसे बहुत जगह अर्थ का अनर्थ हो गया है। मैं प्रत्येक पुस्तक से कुछ ऐसे ही उदाहरण उद्धृत करता हूँ जिनसे पाठक स्वयं अनुमान लगा सके ग।

१—रहीम—सम्पादक प० रामनरेश खिपाठी—इसमें २४० दोहे और सोरठे हैं। परन्तु कुल २२ शब्दों के अर्थ दिये गये हैं। इनमें भी दशाश शब्दार्थ अशुद्ध हैं। नमूना देखिये —

“दाग दिवावत आपु तन, सही होत अस्वार”

इसमें ‘सही शब्द का अर्थ निशानी या दस्तखत है, परन्तु सम्पादक ने अर्थ किया है ‘साईस’।

ब—“माह मास लहि टेसुआ, मीन पर धल आर”

इसमें ‘टेसुआ’ का मतलब ‘टेसुराजा’ से है जिनकी मूर्त बनाकर लड़के द्वार की पूर्णिमा को विवाह कराते हैं, परन्तु सम्पादक ने इसका अर्थ ‘टेमू या पलाम’ दिया है, जो यहाँ युक्तिसंगत नहीं है। इत्यादि।

इस पुस्तक के सम्पादन में भी पाठ की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।

२—रहिमन क्ल्यास—सम्पादक धायू भ्रजतरनदास। इसमें २६५ दोहे और सोरठे हैं। शब्दार्थ व टिप्पणी भी अच्छी सग्या में दी गई है। कुछ नमूने देखिये —

अ—“अनुचित वचन न मानिये, जदपि गुराइसि गादि”

इसमें ‘गुराइसि’ शब्द का अर्थ ‘गुरुजनों की आज्ञा’ है, पर सम्पादक ने इसे गुराइस शब्द मान इस ‘गुराइस गादि’ का अर्थ किया है ‘गुरु के ऐसा गादा’।

ब—“फूल स्यामा के उर लगे, फूल स्याम उर माहि”

इसमें ‘फूल’ शब्द का अर्थ है ‘आनन्द’। सम्पादक ने ‘कमल की माला’ अर्थ दिया है, जिससे दोहे का सौष्टव और कवि का भाव ही नष्ट हो गया है।



स—“बड़े बड़े बैठे लसौ, पथ रथ-कृवर छाँह”

इसमें ‘रथ कृवर’ का अर्थ ‘रथ में बैठने का स्थान’ है, क्योंकि रथ में ठने की जगह पर कुबड़ी छत में छाया की जाती है। सम्पादक ने इसका अर्थ दिया है—‘रथ का वह भाग जिस पर जुआँ थाँधा जाता है’—‘हरसा’, ‘कृमिछा’, जो युक्तिसंगत नहीं हैं।

द—“हम तन ढारत डेकुली, सींचत आपन खेत”

इसमें ‘डेकुली’ शब्द का अर्थ दिया है—‘गडारी, जिस पर से रस्मी जाती जाती है’। यह युक्ति-संगत नहीं है। इसी प्रकार दोहा न० १९, २५, ५६, ८५, १०८, १२१, १४९, १६९ और २४७ आदि पर भी टिप्पणीय शब्दार्थ विचार पूर्ण नहीं दिये गये हैं।

दोहो के पाठो की तरफ इसमें भी ध्यान नहीं दिया गया है। इसमें भी दोहा न० ६६, १०३ एक ही हैं, परन्तु थोड़े से शाब्दिक परिवर्तन के साथ दो माने गये हैं।

अत्र यदि दोहा-मंथ्या पर विचार किया जाय तो यह निश्चित है कि रहीम ने अपने दोहो में ‘रहीम’ या ‘रहिमन’ उपनाम अवश्य रक्खा है जो उनके दोहो के लिये कसौटी का काम देता है। यद्यपि मैंने भी इस संग्रह में ऐसे दोहे दिये हैं जिनमें रहीम की छाप नहीं है, पर जब तक यह सिद्ध न हो जाय कि वे रहीम के नहीं, अमुक कवि के हैं, तभी तक वे रहीम की सम्पत्ति हैं। यही सर्व-सम्पत्ति भी है। परन्तु ‘रहिमन विलास’ में दोहा न० २, ४०, ८८, ९८ और १४४ ऐसे हैं जो रहीम की सम्पत्ति में सम्मिलित नहीं किये जा सकते, क्योंकि न० २ और १४४ को यद्यपि सम्पादक ने दो श्लोकों के आधार पर बना हुआ बताया है जो रहीम के ही लिखे हुए हैं, परन्तु इनमें ‘रहीम’ की छाप नहीं है, यदि कवि अपने लिखे श्लोकों के आधार पर दोहे बनाता तो अपनी छाप अवश्य

खता । रहीम की छाप का न होना ही इनको अन्य कवि के बनाये हुए  
सन्देह करता है ।

नं० २० ओर ९८ में यद्यपि रहीम की छाप है, पर प० गमनरेश त्रिपाठी  
य यह कथन

“ X X जिनमें रहीम का नाम नहीं है वे दोहे तो सशयास्पद  
हैं, किन्तु कई नामवाले दोहे भी वृन्द, तुलसी और अन्य कवियों  
के हैं । इसमें जान पड़ता है कि रहीम के दोहों का आदर इतना  
बढ़ चला था कि अन्य कवियों के दोहे भी उनके नाम से प्रसिद्ध कर  
दिये गये ।”

यथार्थ में सत्य है । इनमें ४०, ९८ नम्बर के दोहे वृन्द कवि के  
। देपो वृन्द-मतसई भारतजीवन प्रेस, काशी द्वारा सन् १८९१ की  
सी, पृष्ठ ३ और ६ । न० ८८ के दोहे में रहीम की छाप भी नहीं है  
। न वह रहीम का है । यह दोहा भी वृन्द कवि का ही है । देखो वृन्द  
मतसई पृष्ठ २ ।

मैंने जो इस 'विनोद' में २६८ दोहे दिये हैं उनमें से २६० तो  
। ले की सम्पादित पुस्तकों के ही हैं, शेष ६ में से २ लाला भगवानदीन  
। सम्पादित सूक्ति-सरोवर पृष्ठ ४०६ और ४१५ से, १ रामचरित-मानस  
। भूमिका पृष्ठ ३० से, जिसके लेखक बाबू श्यामसुन्दरदास श्री० प०  
। प्रकाशक इण्डियन प्रेस, प्रयाग हैं, १, सन् १८४३ के हस्तलिखित  
। टकर संग्रह से और ३ याज्ञिक-ग्रन्थों के 'भाषुरी' फाल्गुन संवत् १९८१  
। छाप से लिये गये हैं । दोहों का पाठ अधिकतर 'रहिमन के दोहे',  
। रहीम' या हस्तलिखित फुटकर संग्रह के आधार पर दिया गया है ।

रहीम के सम्पूर्ण दोहों को इन चार भागों में विभाजित किया गया है—

१—धर्मगुच्छ—इसमें ईश्वर, ज्ञान, वैराग्य आर भक्ति विषयक सभी  
। हिं एकत्रित कर दिये गये हैं, जिनको पढ़कर पाठकों के मुख से महिमा यही

जी ज्योतिषी काशी की कृपा मे प्राप्त हुआ है और पाठान्तर प० धनवारीलाल दीक्षित व्याकरण शास्त्री इरुनार द्वारा प्राप्त हुआ है । रहीम-काव्य के सम्पादन में भी पाठ की ओर 'रहीमन विलास' के सम्पादक ने किञ्चिन्मात्र ध्यान नहीं दिया है ।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसमे मेरा आशय किसी की त्रुटियाँ दिखाना नहीं है । बल्कि रहीम के काव्य मे प्रेम होने के कारण जैसा मैंने उसको समझा है उसका केवल दिग्दर्शन-मात्र कराया है । यह तो मैं स्वयं स्वीकार करता हूँ कि रहीम की कविता के भूतपूर्व सम्पादकों के सहारे मे ही मैं यह 'विनोद', जैसा कुछ बन पड़ा, उपस्थित कर रहा हूँ । मुझमे भी ऐसी ही भूलें रह जाना सम्भव है, जिनका आगे चलकर कोई महानुभाव स्पष्टीकरण कर डालेगे । फिर भी साहित्य सेवा के विचार से ही मैं यह 'विनोद' पाठकों के सामने रखता हूँ आर आशा करता हूँ कि मेरी अक्षम्य भूलों को भी पाठक सुधारकर 'रहीम-प्रेमियों' का उपकार करेंगे ।

मैं उन महानुभावों का परम कृतज्ञ हूँ जिनके द्वारा मुझे नये छन्द मिले हैं, अथवा जिनकी सम्पादित पुस्तकों मे मुझे इस सग्रह के सम्पादन में सहायता मिली है । सिवाय इसके श्रीमान् प० रामशरण तिवारी वी० ए० और श्रीमान् मिश्रवर प० भार्गीरथप्रसाद दीक्षित 'विशारद' का भी परम कृतज्ञ हूँ, जिनकी सहायता व प्रोत्साहन से मैं इस पुस्तक को इस रूप में लेकर पाठकों के सामने उपस्थित हो रहा हूँ । अन्त में काव्य-मर्मज्ञ पं० कृष्ण त्रिहारीमिश्र वी० ए०, एल० एल० वी० के प्रति, जिन्होंने वरवैनायिका-भेद को देखकर अपनी सुसम्मति से मेरी अभिलाषा पूर्ण की है, कृतज्ञता प्रकट करता हुआ, मैं अपने वक्तव्य को समाप्त करता हूँ । ओ३म् शम् ।

क्योंटोरा - ( इटावा )  
कार्तिकी पूर्णिमा, १९८२

} अयोध्याप्रसाद शर्मा, विशारद

# कवि का परिचय

## पूर्वज



पने चरित नायक का सविस्तर वर्णन लिखने में पहले मैं यह आवश्यक समझता हूँ कि प्रथम उनके पूर्वजों का संक्षिप्त परिचय दे दिया जाय ताकि उनके मुगल-वंश में घनिष्ठ सम्बन्ध भी प्रकट हो जाय और साथ ही उनकी जीवनी पर प्रकाश डालने में भी सुगमता हो।

**वंश-परिचय**—मुआसिर-उल-उमरा के लेखक ने कवि की जाति तुर्कमान और वंश का नाम कराक्यूयलू लिखा है। इसमें प्रकट है कि वे तुर्कमान जाति के कराक्यूयलू नामक घराने में से थे।

**पूर्वज परिचय**—इनके पूर्वज आजर वायजान म, जो ईरान का एक सूबा ह और जिसको अत्र अरमीनियों कहते हैं, रहते थे। संवत् १४३२ में सुल्तानहुसेन इल्कानी ने तुर्कमानों पर चढ़ाई करके वे गढ़ और नगर छीन लिये जो उनके सरदारों के अधीन थे। तत्पश्चात् सुल्तानहुसेन के पुत्र सुल्तान अहमद जलायर ने कराक्यूयलू के ५ हजार तुर्कमानों की सहायता में अपने भाई शेरअली को बगदाद पर अधिकार जमा लिया और जिसको संवत् १४५० में अमीर तैमूर ने सुल्तान अहमद से छीन लिया। परन्तु जब अमीर तैमूर तूरान की ओर चला गया तो उसने पुन बगदाद पर अधिकार जमा लिया। इसके पश्चात् १४५६ ५७ में अमीर तैमूर ने ईरान वापस आकर बगदाद छीन लिया और सुल्तान अहमद को मग अपने सहायक बगदुसुफ तुर्कमान के मिथ्र देश को भाग जाना पड़ा, जो

पुन अमीर तैमूर की मृत्यु सुनकर सन्वत् १४६१ में ईरान वापस आया। वापस आते ही सुल्तान अहमद ने बगदाद पर और करायूसुफ ने तवरेज पर अपना अपना अधिकार जमा लिया। सन्वत् १४६७ में सुल्तान अहमद ने तवरेज भी लेना चाहा, पर वह युद्ध में मारा गया और बगदाद पर भी करायूसुफ का ही अधिकार हो गया। इसी समय में करायूसुफ तुर्कमानों से ब्रादशाही आई और करायूसुफ इस घराने का पहला ब्रादशाह हुआ।

यद्यपि तैमूर के बेटे पोते इमसे आर इसकी संतानों से बराबर झगड़ते ही रहे, परन्तु तो भी तुर्कमानों का राज्य ६५ वर्ष तक उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया और वह सन्वत् १५२५ में जाकर समाप्त हुआ।

करायूसुफ वंश की शाखाओं में एक शाखा 'बहार लु' भी थी जिसके अमीर अलीशकर बेग को करायूसुफ ने हमदान, देनूर और गुर्दिस्तान के इलाके जागीर में दिये थे आर जो तुर्कमानों का राज्य चले जाने के पीछे तक अलीशकर की विलायत कहलाते रहे।

यही अलीशकर बेग हमारे चरित नायक का मूल पुरप था। करायूसुफ वंश से ब्रादशाहत चले जाने पर इनके पुत्र ने तैमूर वंशीय सुल्तान अहमद ईद के यहाँ नौकरी कर ली, जिसके ज्येष्ठ पुत्र महमूद मिरजा ने इसकी यहिन यशारेगम से विवाह कर लिया। इस सम्बन्ध से बहारलु-वंश की मुगल-वंश से पूर्ण घनिष्टता हो गई आर इनकी गणना उनके निजके अमीरों में होने लगी।

अलीशकर का संतानों में पीरअली ही वीर और साहसी था। वह पहले तो हिसार शादमाँ में महमूद मिरजा के पास रहा, पर फिर ईरान चला गया। वहाँ पर समय पाकर निज का राज्य-स्थापन हेतु उद्योग भी किया, पर विफल मनोरथ होने पर सुरामान चला गया आर यहाँ मृत्यु को प्राप्त हुआ। इसका पुत्र यारबेग, जो ईरान में रहना था, सन्वत् १५५७ में शाह इस्माईल मफरी के अधिकृत हो जाने पर बख्शनाँ चला आया और वहाँ से कुन्दुज जाकर अमीर एमुरो के पास रहने लगा। पर

जब सन् १५६१ में बाबर बादशाह फरगाने को त्यागकर बख़्शों आया तो सुमरोशाह ने बख़्शों का सूक्ष्म अधिकार में दे दिया। तब में बाबर भी अपने पुत्र सफ़ली समेत बाबर बादशाह की नौकरी करने लगा। बाबर की सेवा में रहते समय ही बख़्शों में सफ़ली के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम बैरम बेग रखा गया जो पीछे से 'खानखाना' खानखाना कहलाया। यही हमारे चरित्र-नायक के पिता थे। इनके जन्म सन् का निश्चित पता किसी इतिहास में नहीं लगता है और न यही ज्ञात होता है कि यह हुमायूँ बादशाह के पास आकर कब नौकर हुये। केवल इतना ज्ञात है कि बैरम बेग ने बख़्शों से बलब जाकर विद्याध्ययन किया और १६ वर्ष की आयु में हुमायूँ बादशाह की सेवा में पहुँचकर नौकरी कर ली, जिसमें बढ़ते बढ़ते प्रधानमन्त्री के पद तक उन्नति पाई। हाँ, अकरब के उस पद के आधार पर, जो इनके विद्रोही होने पर उसने लिया था कि—“X X X हमको यह भरोसा है कि तुमने अपनी समझ में इनमें से कोई काम नहीं किया। X X X परन्तु तुम्हीं कहो कि क्या ४० वर्ष तक स्वामिभक्ति से सेवा करने, प्रतिष्ठा में परमपद को पहुँचने और जगत् में कीर्ति पाने के पीछे भी इस शेषावस्था में स्वामिद्रोही बनोगे X X X।” यह कहा जा सकता है कि विद्रोही होने के समय यह ५६ वर्ष के होंगे। इसी आधार पर इनका जन्म सन् १५६० के लगभग माना जा सकता है।

'खानखाना' की उपाधि के विषय में भी यह निश्चयारमक नहीं कहा जा सकता कि वह कब मिली। अल्पज्ञात इतना ज्ञात है कि 'खाँ' की उपाधि ईरान के बादशाह ने इ. स. १६०१ में दी थी जब यह हुमायूँ के साथ बर्हो गये थे। इसी से यह अनुमान किया जा सकता है कि 'खानखाना' की उपाधि हुमायूँ बादशाह के ईरान से आकर कंधार, काबुल या हिन्दू लेने के पीछे सन् १६०२ से १६१२ तक विन्ती वर्ष में मिली होगी।

यह बड़े वीर और साहसी थे । द्वितीय बार हुमायूँ को हिन्द पर विजय इन्हीं के कारण प्राप्त हुई थी । इसके अलावा इन्होंने बहुत से युद्धों में विजय प्राप्त की थी ।

पूर्वज-परिचय पढ़ने से पाठकों को यह भली प्रकार विदित हो गया होगा कि रहीम की मुगलों के साथ घनिष्टता कालान्तर से चली आ रही थी । वह इनके समय में और भी दृढ़ हो गई ।

**जन्म-काल**—जब द्वितीय बार हुमायूँ हिन्द में आया तो उसने ईरान के बादशाह हुमायूँ सफ़वी के कथनानुसार<sup>१</sup> जमींदारों की पुस्तियों में अपने अमीरों के विवाह कराये । आपने भी हिन्द के सय से बड़े जागीरदार हसनख़ाँ मेवाती के चचेरे भाई जमाळख़ाँ की दो कन्याओं में एक का अपने साथ और दूसरी का बेरामख़ाँ खानखाना के साथ विवाह किया, जिससे मगसर सुदी १४ सोमवार सवत् १६१३ को पुत्रोत्पन्न हुआ, आर जिस का नाम अकबर बादशाह ने 'अब्दुल रहीम' रखवाया ।

**बाल्यकाल**—इनके पिता बेरामख़ाँ, जो अन्तिम समय में विद्रोही हो गये थे, पकड़कर बादशाह अकबर के सामने लाये गये । पर क्षमा याचना के साथ, मरना जाने की इच्छा प्रकट करने पर, दयालु अकबर ने इन्हें क्षमा करके हज के लिये जाने की आज्ञा दे दी । इन्होंने सपरिवार मक्के को प्रस्थान किया, पर गुजरात के पट्टननगर में माघ सुदी १५ सवत् १६१७ को सुवारक ख़ाँ नामक पठान ने इन बंध कर डाला । बालक रहीम उस

१—शाह ने कहा था कि आपने हिन्दुस्तान के जमींदारों से रिश्तेदारी नहीं की और अजनबी में बने रहे, इसी से आप के पेर नहीं जमे । अब जो पुन यादशाही मिले तो दो काम जरूर करना—एक तो पठानों को व्यापार में लगाना, दूसरे वहाँ के राजाओं और जमींदारों से रिश्तेदारी करना ।

समय केवल ४ वर्ष का था। इनकी मृत्यु सूचना जय बादशाह को मिली तो खानखाना की मृत्यु पर बादशाह ने बड़ा शोक प्रकट किया और गलक रहीम को सपरिवार अपने पास बुला लिया, जहाँ पर इनके पढ़ाने लिखाने और सम्भ्रता सिखाने में किसी प्रकार छुट्टि नहीं होने पाई।

**युवाकाल**—बड़े होने पर बादशाह ने इन्हें 'मिरजापों' की उपाधि प्रदान की और अपनी धाय माँ की बेटी माहबानू से इनका विवाह कर लिया। इस सम्बन्ध में बाप की तरह इनकी भी शाही घराने से घनिष्टता बढ़ गई।

अब यह शाही कामों में योग देने योग्य हो गये थे। अतः जय बादशाह ने गुजरात पर चढ़ाई की तब यह भी साथ थे। इस समय बादशाह ने इन्हें पाटन की जागीर प्रदान की। इसी प्रकार इन्होंने गुजरात के कई युद्धों में सहायता दी, जिसके कारण बादशाह ने सन् १६३३ में इनको गुजरात की सूबेदारी पर नियुक्त किया। इसके पश्चात् यह दो वर्ष तरु मेराठ प्रान्त में युद्ध करते रहे, इसी समय इनके घर की बेगमें एक बार राजपूतों के हाथ पड़ गई, पर राणा प्रताप ने बड़े ही आदर के साथ उनको रहीम के पास भेज दिया। तभी से राणाजी पर इनकी बड़ी श्रद्धा हो गई और इसी के प्रत्युपकार में इन्होंने बादशाह से प्रार्थना करके मेराठ पर एक बड़ी चढ़ाई करवा दी थी। यह सदैव राणा के स्वामिमान और देशभक्ति की प्रशंसा किया करते थे।

मेराठ में वापस आने पर इनके गुणों पर मोहित हो और सब प्रकार से योग्य समझ सन् १६३७ में इन्हें मीर जर्न के पद पर नियुक्त किया। इस पद से इनके पेश्वर्य और सम्पत्ति दोनों की वृद्धि हुई। यह समय इनके भाग्योदय का था, इसीसे यह बड़ी शीघ्रता से उन्नत होत जा रहे थे। मीर जर्न होने के ८ मास पश्चात् ये अजमेर के सूबेदार बनाये गये और माघ बंदी ३ सन् १६३८ के दरबार में उच्च पद प्रदान किया गया। इस



समय बादशाह इनकी युद्धिमत्ता पर इतने मोहित हो गये थे कि महत् महत् पद देते हुये भी किंचित न हिचकिचाते थे। इसीसे बड़े शाहजाह सलीम के शिक्षक व संरक्षक का स्थान रिक्त होने पर इनकी ही उस पर नियुक्ति की गई। इस महत्साभाग्य पर इन्होंने बड़ा उत्सव किया, जिसमें स्वयं बादशाह ने आसौज बटी ८ रविवार सवत् १६३९ को इनके घर पर पधारकर इनके मान को बढ़ाया आर सम्पूर्ण जनो को आनन्दित किया।

इसके पश्चात् जब बादशाह ने राज्य के सुप्रबंध हेतु शाहजादों में कार्य विभाजित किया तब बड़े शाहजादे सुल्तान मलीम के आप सहायका में रखे गये।

गुजरात का युद्ध—इस समय इनका सौभाग्य-चन्द्र पूर्णरूपेण देदीप्यमान हो रहा था। अत बादशाह ने कार्तिक २८ वीं सवत् १६४० को एक बड़ी सेना के साथ, जिसमें ११ अमीरों की भी नोकारी थी, गुजरात विजय करने के लिये पुन भेजा, क्योंकि वहाँ का पहला सुल्तान मुजफ्फर, जिसको बादशाह संवत् १६२९ में हराकर बन्दी बना लाये थे, सवत् १६३५ में बन्दीगृह से भाग गया और गुजरात में जाकर उसने पुन उत्पात आरम्भ कर दिये थे। यह यहाँ से प्रस्थान कर माघ बटी १ बुधवार सवत् १६४० को पाटन पहुँचे, वहाँ की सेना ने आपका सहर्ष स्वागत किया। यहाँ आपने अपनी सेना को सुचारु रूप से संगठित किया और माघ सुदी १४ गुरुवार सवत् १६४० को सपरजेज की ओर अहमदाबाद और नदी के बीच में डेरे डाले और यहीं से ब्यूह रचकर युद्ध प्रारम्भ किया। घमासान युद्ध के पीछे इनकी अगुणी सेना आर उसके पृष्ठ-रक्षक भाग खड़े हुए, पर तो भी यह ३००० वीर योद्धाओं और हाथियों

उपलक्ष्य में इन्होंने बड़ा उत्सव किया आर प्रतिज्ञानुसार सम्पूर्ण धन, जो उस समय उनके पास था, अपने सब साथियों में विभाजित कर दिया ।

इसके पश्चात् इन्होंने मुजफ्फर को, जो खंभात की ओर भाग गया था, पीछा करके कई जगह पराजय दी । जय बादशाह को मुजफ्फर पर इनकी विजय की सूचना मिली तो उन्होंने यही प्रसन्नता प्रकट की और इस विजय के उपलक्ष्य में इन्हें 'तान-खाना' की उपाधि, एक भारी सरोपा और 'पाँच हजारी मसख' प्रदान किया ।

गुजरात विजय के पश्चात् जेठ वृदी १० संवत् १६४१ को अहमदाबाद आकर देश प्रवृत्त हुए और यहाँ विजय के उपलक्ष्य में एक राग लगवाया और उसका नाम 'फतहवाग' रखा जिसको आजकल 'फतहवाडी' कहते हैं ।

उसके पश्चात् मुजफ्फर के पुन सिर उठानेपर भड़ोच विजय की, जामनगर के राजा को अधीन किया आर मुजफ्फर को हराया । त्रवार का बुलावा आने पर सावन सुदी ३ संवत् १६४२ को अहमदाबाद में प्रस्थान कर भादो वृती ६ संवत् १६४२ को बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए । वहाँ से आश्विन वृदी ५ संवत् १६४२ को पुन गुजरात जाने की आज्ञा पाकर अहमदाबाद को छोटे ओर मार्ग में सिंगेही और जालोर के अधिपतियों को अधीन करते आर शिकार खेलते हुए गुजरात जा पहुँचे । इस प्रदेश में शान्ति-स्थापन कर संवत् १६४४ में शाहजादे मुराद के विवाह में सम्मिलित होने के लिए बादशाह की सेवा में उपस्थित हुए ।

विवाह के पश्चात् यह बहुत दिनों तक त्रवार में रहे । उस समय बादशाह बहुधा इनको दरवारियों के झगड़ों में पक्ष बनाते रहे । इसके पश्चात् संवत् १६४६ में जय बादशाह ने कश्मीर को पर्याप्त किया तब इनको भी साथ ले गये । कश्मीर में बादशाह काबुल गये और वहाँ से

हिन्द को लोटे। हिन्द की वापसी के समय योरत पडाव पर खानसारा ने 'वाकआत वापरी' का फारसी-अनुवाद बादशाह की सेवा में अर्पित किया, जो पहले तुर्की भाषा में था। इस पर बादशाह ने इनको बहुत धन्यवाद दिया और इनकी इस प्रकार की कार्य दक्षता और निस्वार्थता से प्रसन्न हो इन्हें पौष बंदी १३ सवत् १६४६ को महामल्ली के पद पर नियुक्त किया, जो टोडरमल की मृत्यु हो जाने के कारण रिक्त हो गया था। यह पद मुगल-साम्राज्य में सर्वोपरि माना जाता था। महामल्ली बादशाह का प्रतिनिधि समझा जाता था। इनके पिता भी इस पद पर रह चुके थे।

इसके पश्चात् गुजरात मिरजा अजीज कोका को जागीर म दिया गया और जौनपुर इनको देकर कंधार विनय करने के लिये भेजा गया। इन्होंने प्रस्थान कर मुल्तानवाला मार्ग पकड़ा जो पहले ही से इनकी जागीर में था। इन्होंने मार्ग ही से बादशाह से प्रार्थना की कि मुझे सिंध विजय की आज्ञा दी जाय। बादशाह ने इनकी प्रार्थना स्वीकार कर कंधार विनय के लिए शाहजादे दानियाल को भेज दिया। अतः खानखाना ने मुल्तान पहुँच बुद्धिमत्ता से काम ले लम्बी को ले लिया, जो सिंध देश का द्वार कहलाता था। लम्बी-दुर्ग की विनय सुन मिरजा जानी, जो सिंध का अमीर था, युद्ध के लिये आया, परन्तु घमासान युद्ध के पश्चात् पराजित हुआ, उससे मेविस्तान का जिला, मेहवान दुर्ग, २० जङ्गी गाव और अपनी पैटी मिरजा एरच को देना स्वीकार करने पर इन्होंने संधि करली और वर्षा ऋतु के अन्त में बादशाह की सेवा में उपस्थित होने का वचन देने पर खानखाना ने घेरा उठा लिया।

सवत् १६४९ में मिरजाजानी को बादशाह की सेवा में उपस्थित करने के पश्चात् इन्हें पुनः दक्षिण की अशान्ति मिटाने हेतु भेजा गया। वहाँ शाहजादा-भुराट और इनमें कुछ अनवग हो गई, परन्तु यह स पुनः दक्षिण ही में रहकर कार्य करते रहे,—यहाँ तक कि कार्तिक सुदी १४

सन् १६६० को अकर वादशाह का देहान्त भी हो गया और जहोंगीर राज्य सिंहासन पर सुशोभित हो गये। पर दक्षिण में जब तक शान्ति न हुई, यह नये बादशाह की सेवा में भी उपरिगत नहीं हुए। दो-तीन वर्ष पश्चात् जब कुछ शान्ति हुई, तब यह भादों बरी १२ संवत् १६६१ को बादशाह के चरणों में उपस्थित हुए और लगभग ३ लाख रुपये के मोल के हीरा-माणिक उन्हें भेंट किये।

वृद्धावस्था—इस समय रहीम ५० में ऊपर पहुँच चुके थे, परन्तु उनमें उरसाह नवयुवकों में भी बढ़कर था। अतः कुछ दिन दरबार में रह दक्षिण विजय की प्रतिष्ठाकर यह पुनः दक्षिण को रवाना हुए। इनके जाने के पश्चात् आवश्यकता होने पर बादशाह ने शाहजादे परवेज को भी दक्षिण के लिए रवाना किया, पर बादशाहीदल की फूट के कारण कुछ लाभ न हुआ और लोगों के शिकायत करने पर खानखाना को वापस बुलाकर दक्षिण में खानखाना की तैनाती की गई, जहाँ पर कुछ फल निकला। अतः अन्त में खानखाना को '६ हजारी मसब' उनके बड़े पुत्र शाहनवाज खाँ को '३ हजारी मसब', छोड़े, हाथी आदि देकर पुनः दक्षिण भेजा। शाहनवाज खाँ ने कठिन लड़ाई के पश्चात् मलिक अम्वर को पूर्ण रीति से पराजित कर दिया।

अन्य सन् १६७३ में बादशाह ने परवेज को दक्षिण में हटाकर सुर्रम को उसकी जगह तैनात किया और स्वयं माहू आया। सुर्रम ने दक्षिण में आशातीत सफलता प्राप्त की, अर्थात् बीजापुर और गोलकुण्डा के सुल्तानों और मलिक अम्वर में वश्यता स्वीकार करा, खानखाना को खानदेश, यरार और अहमदनगर का सूबेदार नियुक्त कर और शाहनवाज खाँ को विजित प्रान्तों का अधिकार दे, स्वयं बादशाह की सेवा में माहू जा उपस्थित हुआ, जहाँ उसका बड़ा स्वागत हुआ। इस समय बादशाह की आज्ञानुसार शाहजहाँ (सुर्रम) ने शाहनवाज खाँ की पुरी में विराह कर लिया। संवत् १६७५ में खानखाना के दरबार में आन पर उन्हें 'मात हजारी मसब' देकर पुनः सूबेदारी पर वापस भेजा गया। इसके दमरे ही

वर्ष इनके बड़े पुत्र की, अत्यन्त मध्य होने के कारण, मृत्यु हो गई, जिससे इनको ही नहीं, बादशाह को भी बड़ा शोक हुआ। इसके १ माल पञ्चात् ही इनके दूसरे पुत्र रहमानदाद की भी मृत्यु हो गई। इससे इनको और भी सदमा पहुँचा। इनके असमय का श्रीगणेश यहीं से होता है।

इन्हीं दिनों सुर्रम ने पिता (बादशाह) के विरुद्ध विद्रोह किया और दक्षिण में होने के कारण खानखाना को भी इसका साथ देना पड़ा। इसी समय पर बादशाह ने इनको गमकहराम लिखा है।

अब खानखाना के भाग्य चक्र ने पलटा खाय़ा और यजाय उन्नत होने के उन्हें अवनत पथ की ओर अग्रसर किया। इन दिनों यहाँ तक नौबत पहुँच गई थी कि यह “वेपेंदी के लोटे” की तरह कभी उधर (सुर्रम की ओर) और कभी उधर (बादशाह की ओर) लुढ़कते थे। इसी से पहले इनको सुर्रम ओर पीछे से महावतख़ाँ की कैद तक में रहना पड़ा था। इस समय इनके सम्पूर्ण मरातिर के साथ जागीर भी छीन ली गई थी, परन्तु जब घाप-बेटे में सुलह हो गई तब बादशाह ने इन्हें महावतख़ाँ की कैद से डुबाकर अपने पास बुला लिया और यह समझाकर कि—“अब तक जो कुछ हुआ, दैव सयोग से हुआ—न कुछ हमारे अख्तियार की बात थी, और न तुम्हारे। तुम इसका अधिक शोक-सन्ताप न करो।”—पुनः मसय और पदवी प्रदान की। इस पर इस वृद्ध सरदार ने तुरन्त यह शेर पढ़ा था—

“मरा लुत्के जहाँगीरी जे नाई दाते ख्वानी।

दोवार जिन्दगी दाद दोवार खानखानानी।”

इसका भाव यह है कि ईश्वरीय सहायता से, जहाँगीर की कृपा ने, मुझे दृमरी बार जीवन और खानखाना की उपाधि दी।

इनको खानखाना की उपाधि देकर और कन्नौज का अधिपति बनाकर भेजा गया था, पर महावतख़ाँ के विद्रोह करने पर इन्हें मार्ग से ही घापस आना पड़ा। जब यह लाहौर से सेना लेकर महावतख़ाँ पर

चले तत्र मार्ग में बीमार पड़ गये, अर्थात् जत्र दोनारा इनका मायोदय हुआ तत्र इनकी उम्र ने साथ न दिया और दिल्ली पहुँचकर अधिक बीमार होने के कारण वहीं ठहर गये और सन् १०३६ हिजरी के त्रिचल महीने में सर्वदा को शान्त हो गये। इस समय इनकी आयु ७० वर्ष के लगभग थी।

यह कितने दुःख की बात है कि खानखाना को मृत्यु तिथि का निश्चित पता अब तक नहीं लगा है। स्वर्गीय मुशी देवीप्रसादजी खानखाना नाम (दूसरा भाग) पृष्ठ ९७ पर लिखते हैं —

“हम एक सन् हिजरी के त्रिचले महीने जमादिउल्सानी या रजब माने जा सकते हैं। इस हिसाब से खानखाना का देहान्त फागुन सन् १६८३ या चैत्र सन् १६८४ में हुआ होगा। अरमोस है कि तुजुक जहाँगीरी में खानखाना के मरने की मिति नहीं लिखी है।”

इनके चार पुत्रों में दो पुत्रों की मृत्यु का वृत्तान्त लिया जा चुका है। तीसरा पुत्र दराज खाँ, पग्वेज और महावतखाँ के हाथ पकड़ा जाकर मारा गया और उमका मिर कपड़े में लपेटकर जहाँगीर की इच्छानुसार खानखाना के पास थन्दीगृह में तरजू के नाम पर भेंट-स्वरूप भेजा गया, जिसे देखकर वृद्ध ने केवल इतना कहा कि ‘तरजू शहीदी’ है। दराजखाँ और शाहनवाज खाँ के पुत्र पहले ही मारे जा चुके थे। चाया ग़सी-पुस था, जो यौवनावस्था ही में मृत्यु को प्राप्त हो गया था।

✓ उपर जो कुछ वर्णन किया गया है उसमें प्रकट है कि यह यद्वे वीर और बुद्धिमान थे—अपने युद्ध-क्षेत्र में महामती तक के पद को पहुँच गये थे। वीर होने के साथ ही साथ यह साहिय के कुछ कम प्रेमी न थे। इनकी साहित्यिक विद्वत्ता वीरता के साथ ‘मोने म सुगध’ की यशस्वत चरितार्थ कर रही है।

कवि होने के साथ ही साथ यह कवियों के आश्रयदाता भी थे। अबुल्फजल ने बादशाही दरवार के जितने कवि लिखे हैं, उनमें से अधि

काश आपके आश्रित रह चुके थे। उरफी, नजीरी और शकरी आदि कवियों ने अकबर, जहाँगीर और शाहजादे मुराद की प्रशंसा में कविता की हैं, परन्तु उसमें कहीं बदनर खानखाना की प्रशंसा में इन कवियों ने कविता की है, जिसमें इनकी उच्च उदारशयता और काव्य-मर्मज्ञता प्रकट होती है।

साहित्य-मर्मज्ञ और प्रतिभाशाली कवि होने के सिवा ये बड़े दार्ढ्य और परोपकारी भी थे। मुल्ता शकरी को आपने मीरजानी पर विजय पाने के समय एक मुसदस के लिये दो हजार अशकियाँ पुरस्कार-स्वरूप दी थीं और 'गग' कवि को एक ही छन्द पर ३६ लाख रुपये दे डाले थे। अपने दोहों में भी इन्होंने दान की सूच ही प्रशंसा की है।

यह भी किंवदन्ति है कि गोस्वामी तुलसीदास से भी इनका परिचय था। एक बार एक ब्राह्मण को, जो कन्या के विवाह हेतु धन का इच्छुक था, गोस्वामीजी ने इनके पास निम्न आधे दोहे को लिखकर भेजा—

“सुर तिय नर तिय नाग तिय, सब चाहत अस होय”

राहीम ने ब्राह्मण को धन देकर दोहे की पूर्ति इस प्रकार करके उसे तुलसीदास के पास भेज दिया।

“गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय”

### अकबर की नीति

अकबर से पूर्व साढ़े तीन सौ से अधिक वर्ष की तुर्क आर पठानों की बादशाहत में निरन्तर हिन्दुओं के साथ छेड़ छाड़ और लड़ाई झगड़े चलते रहे। धर्म-द्वेष के कारण वे हिन्दुओं को तुच्छ समझते रहे। इसी कारण हिन्दू और मुसलमानों में परस्पर की प्रीति कभी स्थापित न हुई। इन्हीं आन्तरिक उपद्रवों में लाभ उठाकर एक मुसलमान राजवंश के बाद दूसरा राजवंश इस देश का स्वामी बनता रहा। यद्यपि मुगल आर पठान आदि एक ही धर्म के माननेवाले थे, तो भी राज्य व्यवहार में धर्म के नाते का

कभी विचार नहीं किया गया। अपना राज्य भारत के अधिकांश भाग से उठ जाने के कारण पठान आदि मुगलों के शत्रु हो रहे थे। इस भय की मिटाने के लिए अकबर-जैसे नीति निपुण बादशाह ने शाह तहमास की हुमायूँ को दी हुई शिक्षा को कार्य रूप में परिणत करने का निश्चय किया। मुसलमानी कट्टरपन को छोड़कर उसने हिन्दुओं को अपनाया। अकबर की इस नीति से भावों के पारस्परिक आदान प्रदान को अच्छी उत्तेजना मिली।

### अकबरी दरबार

अकबर पहला ही मुसलमान बादशाह था जिसने हिन्दी-कवियों को आश्रय दिया। कहा जाता है कि अकबर स्वयं 'अकबर शाह' के नाम से कविता करता था। अकबर के कर्त मुसाहब और सरदार भी हिन्दी के कवि थे। महाराजा बीरबल अकबरी दरबार के मुसाहब और सरदार थे। इन्होंने 'ब्रह्म' के नाम से कविता की है। यह राज-याज में ही चतुर नहीं थे, बल्कि कविता करने में भी निपुण थे। अकबर ने बीरबल को 'कविराय' की उपाधि दी थी। इनके अतिरिक्त राजा टोडरमल, तानसेन, महाराजा मानसिंह, फैजी, अजुल फजल, नरहर, अजयेस कविवर गग और रहीम उसके दरबार में उपस्थित थे।

अकबर के मल्लियों में अजुलरहीम गॉ खानखाना सब से अधिक प्रतिभाशाली हिन्दी के कवि थे। यह अकबर के पालक बरम गॉ खानखाना के पुत्र थे। यह अग्नी, फारसी, संस्कृत और हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे। यह स्वयं कवि थे और कवियों के उदार आश्रयदाता थे। इनके नीति एवं सुदृढ विषय-मन्वन्धी यथार्थ तथा घटकीले भावों से पूर्ण दोहे हिन्दी-संसार में प्रसिद्ध हैं और जिहालील आदि दो चार लोगों को छोड़ और किसी के दोहे इनकी समता नहीं करते।

### खानखाना की कविता

यह अरबी, फारसी, संस्कृत और हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे। फारसी,



सस्कृत ओर हिन्दी इन तीनों भाषाओं में इन्होंने सफलतापूर्वक कविता की है। इनके निम्नलिखित ग्रंथ प्रसिद्ध हैं —

वाकअत वावरी का फ़ारसी अनुवाद। मूल ग्रंथ तुर्की भाषा में है। तुर्की भाषा से वावर के इस आत्मचरित का फ़ारसी में आपने बहुत ही उत्तम आर शुद्ध अनुवाद किया है। पश्चिमी विद्वानों ने आपके इस अनुवाद की बड़ी प्रशंसा की है।

दीवान फ़ारसी। इसमें आपकी फ़ारसी कविता का संग्रह है। खैतकैतुकजातकम्। यह ज्योतिष-सम्बन्धी ग्रंथ है और छपा हुआ मिलता भी है। इसमें मंगलाचरण के पश्चात् यह श्लोक है —

करोम्यन्दुल रहीमोऽह, खुदाताला प्रसादत।

पारसी पदैयुक्तम्, खैत कोतुक जातकम् ॥

इसमें सस्कृत शब्दों के साथ फ़ारसी शब्दों की पुट अपने ढंग की निराली छत्र रखती है।

रहीम-सतसई। प० नकछेदी निवारी ने लिखा है कि इन्होंने 'रहीम-सतसई' नामक एक ग्रंथ लिखा था। यह ग्रंथ अप्राप्य है। अब तक जो दोहे मिले हैं वे इसी सतसई के बिखरे हुए मोती माने जाते हैं। ये मुक्तक माहित्य-सागर में टटोल-टटोल कर इकट्ठे किये जा रहे हैं। ऐसी दशा में यह दावे के साथ नहीं कहा जा सकता कि दूसरे कवियों के दोहे इसके साथ नहीं मिले हुए हैं। यद्यपि खानखाना ने अपने दोहों में 'रहीम' या 'रहिमन' की छाप रखी है, परन्तु मेरा अनुमान है कि कुछ दोहे ऐसे भी हैं जिनमें भूल से या जान-बूझकर रहीम की छाप तो रख दी गई है, परन्तु वे दूसरे कवियों के हैं। जब तक दो-चार पुराने हस्तलिखित संग्रह प्राप्त न हों तब तक दावे के साथ यह कहना कि यह दोहर रहीम का है और यह दूसरे का है, एक कठिन समस्या है। मैंने भी दोहावली के नाम से रहीम के २६९ दोहों का संग्रह दिया है। इससे अधिक इस समय प्राप्त नहीं हैं। यरवै नायिका भेद। ग्रंथ का विषय नाम से ही स्पष्ट है। इस

गूथ को पहले पहल डुमरॉव निवासी प० नकटेदी तिवारी ने प्रकाशित कराया था। इसमें कवि ने लक्षण न देकर उदाहरण मात्र दिये हैं। यह बड़े आनन्द का विषय है कि हस्तलिखित ग्रंथ मिल जाने से इस बार इस गूथ की छन्द-सर्या ११४ तक पहुँच गई है और पाठ भी शुद्ध हो गया है।

मद्रनाष्टकम्। इसका सम्पादन भी एक हस्तलिखित पुस्तक के आधार पर किया गया है।

रास पञ्चाध्यायी। यह ग्रंथ अप्राप्य है। भक्तमाल की टीका में जो दो पद पाये जाते हैं वे 'रास-पञ्चाध्यायी' के कहे जाते हैं। वे फुटकर-संग्रह में दिये गये हैं।

शृंगार-सोरठ। खानखाना के इस गूथ का उल्लेख शिवमिह संगर ने अपने सरोज म किया है परन्तु अब तक यह गूथ प्राप्त नहीं हुआ है। इनके सोरठों में से कुछ सोरठे अलग करके इस गूथ का स्वरूप खड़ा किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि यह सोरठे इतने चमत्कार पूर्ण हैं कि खानखाना के दूसरे सोरठों के साथ नहीं मिलाये जा सकते। ये सोरठे इस बात को प्रमाणित करते हैं कि शृंगारिक सोरठों की रचना रहीम ने अलग ही की होगी।

फुटकर-काव्य। रहीम की कुछ हिन्दी की फुटकर कविता भी पाई गई है जो 'फुटकर काव्य' शीर्षक के नीचे एकत्र कर दी गई है।

रहीम काव्य। इस गूथ में रहीम के संस्कृत श्लोकों का संग्रह है। 'श्लेष्काहुकजानकम्' से यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि खानखाना ने संस्कृत में भी कविता की है। मेरे अनुमान से 'रहीम-काव्य' नाम का गूथ तो रहीम ने कोई लिखा नहीं परन्तु मनोविगोद के लिये संस्कृत और संस्कृत हिन्दी मिश्रित श्लोकों की रचना अवश्य की होगी। इन्हीं श्लोकों का संग्रह इस नाम का काव्य ग्रन्थ समझना चाहिए।

## काव्य-भाषा

रहीम-कृत हिन्दी ग्रन्थों में सतसई आर वरवे नायिका भेद—यही ने मुख्य हैं। दोहों की भाषा के सम्बन्ध में बाबू ब्रजरत्नदास ने लिखा है—

“दोहों की भाषा मुख्यतः ब्रजभाषा है।”

मिश्रश्रुति ने लिखा है—“इन्होंने शुद्ध ब्रजभाषा में कविता का है और फारसी एवं संस्कृत के पूर्ण विद्वान होने पर भी ग्राह्य भाषा तब का उत्तम प्रयोग करने में ये कृतकार्य हुए हैं।”

प० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—“रहीम ने अवधी भाषा की ओर विशेष रुचि दिखाई। ‘वरवेनायिका भेद’ तो इन्होंने अवधी भाषा में लिखा ही, अपने नीति के चुटीले दोहों में भी अवधी के भोलेपन का पूरा सहारा लिया।”

यह सब स्वीकार करते हैं कि ‘वरवे नायिका भेद’ की भाषा अवधी है, परन्तु मेरी राय में दोहों की भाषा भी न तो शुद्ध ब्रजभाषा है और न मुख्यतः ब्रजभाषा। रहीम की रचि पूर्वी हिन्दी की ओर विशेष पायी जाती है।

यहाँ पर यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि रहीम के दोहों की भाषा के सम्बन्ध में तब तक निश्चय तक कुछ नहीं कहा जा सकता है जब तक उनकी सतसई की कोई प्रामाणिक हस्तलिखित पुस्तक प्राप्त न हो, क्योंकि अभी तो जन श्रुति ही इसका आधार है। अतः भाषा का निर्णय करना असम्भव नहीं तो दुःसाध्य तो अवश्य है। फिर भी सर्वनाम, कारक, विशेषण और शब्दों आदि को देखकर कहा जा सकता है कि इनकी विशेष रचि अवधी ही की ओर थी। देखिये—

खड़ी बोली के ‘कौन’, ‘जो’ और ‘वह’—यह तीन सर्वनाम ऐसे हैं जिनका प्रयोग अवधी भाषा में दो प्रकार का पाया जाता है। के, जे, से या ते और को, जो, सो।

पूर्वी अवधी में के, जे, मे या ते और पश्चिमी अवधी में को, जो, सो मिलते हैं ।

रहीम के यहाँ दोनों प्रकार के प्रयोग पाये जाते हैं, पर विशेष हुआव पश्चिमी अवधी की ओर पाया जाता है । यह भाषा ब्रजभाषा से अधिक हल्काव रखती है । यथा —

“को कासो अन्वरजु कहै ।  
 “जो जानत सो कहत नहिँ ।  
 “जो रक्षक जननी-जठर ।  
 “प्रभु के सो आपनि कहै ।  
 “ते रहीम रघुनाथ ।  
 “तुम विन को भगवान ।  
 “जानि अनीती जे करे ।  
 “जे सुलगे ते बुझि गये । —इत्यादि

को, जो और सो का रूप कारक-चिह्न गृहण करने पर ब्रजभाषा के समान का, जा और ता होता है । जैसे —

“काके काके नवत हम ।  
 “तासों कहा बसाय ।  
 “जाँफे सिर पर ।  
 “जासों लागे नेन ।  
 “जापर बिपदा परत है ।  
 “तासो दुख सुख कहनकी । —इत्यादि

परन्तु के, जे, मे या ते का रूप सामान्य विभक्ति ‘हि’ के साथ कारक चिह्न लगाने पर भी नहीं बदलता । जैसे—

“रहिमन’ जेहि कै बाप कर ।  
 “तेहिकै गइल अकास लौ ॥

“घट्ट-यट्टे तिहिकर कहा ।

“भावी केरि काँ ना दही ।

“केहिके प्रभुता ना घटी । आदि

यही नहीं, रहीम ने व्यक्तिवाचक सर्वनाम भी अवधी भाषा के ही प्रयोग किये हैं ।

हिन्दी के सम्बन्धकारक-चिन्ह में लिङ्ग-भेद होता है । व्रजभाषा में पुलिङ्ग सम्बन्धकारक-चिन्ह ‘का’ हैं और स्त्रीलिङ्ग सम्बन्धकारक-चिन्ह ‘की’ । तुलसी और जायसी दोनों में पुलिङ्ग सम्बन्धकारक चिन्ह ‘कर’ पाया जाता है और स्त्रीलिङ्ग सम्बन्धकारक-चिन्ह ‘के’ । उदाहरण —

१—राम ते अधिक राम कर दासा ।

जेहि पे कृपा राम के होई । —तुलसी

२—सुनि तेहि सन राजा कर नाऊ ।

पलुही नागवती के वारी । —जायसी

रहीम में भी सम्बन्धकारक के चिन्हों में ऐसा ही लिंग भेद है । रहीम ने पुलिङ्ग में ‘के’ का प्रयोग किया है और स्त्रीलिङ्ग में ‘के’ ‘कइ’ या ‘केरि’ का । उदाहरण —

“यह वरचै के वान ।

“आजु नयन के कोरवा ।

“लै हीग्न के हरवा ।

“वह माया कर दोष यह ।

“जम के किंकर कानि ।

“बाढ़े दिन के मीत सब ।

“रहिमन जेहि के याप कर ।

“तन के पीर ।

“रेन जगे कइ निदिया ।

“चेरिया केरि छोहरिया ।

“पायल केरि कँकरिया ।

“प्रभुक सा आपनि कहै ।

“पुरुष पुरातन कै यधू ।

१० रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि बोलचाल की अवधी में यह लिङ्ग-भेद नहीं है। पूर्वी अवधी में सम्भव है न हो, परन्तु पश्चिमी अवधी में आजकल भी यह लिङ्ग-भेद पाया जाता है। बोलचाल की पश्चिमी अवधी में पुलिङ्ग सम्बन्धकारक चिन्ह 'के' 'केर' या 'क्यार' हैं और स्त्रीलिङ्ग सम्बन्धकारक चिन्ह 'कै', 'कइ' या 'केरि'। जैसे—“श्रीकृष्ण के बप्पा आनु आये हैं”, “यह कँहि केर या केहि क्यार खेतु आय”, “श्रीकृष्ण कै महँतारी कहाँ है” तथा “यह वाग केहि केरि आय”। इत्यादि

बोलचाल में उच्चारण संक्षिप्त करने की प्रवृत्ति के कारण अक्षर घिस जाया करते हैं। इस प्रवृत्ति के अनुसार 'केर' के स्थान में 'कै' और 'कर' के स्थान में 'क' का प्रयोग पाया जाता है। तुलसी, जायसी और रहीम तीनों में ये संक्षिप्त रूप मिलते हैं। यथा—

क—धनपति उहै जेहि क ससारू । —जायसी

र—पितु आयसु सब धरम क टीका । —तुलसी

ग—जाति क ऊँच । —रहीम

घ—रहति नयन के कोरवा । —रहीम

अवधी भाषा की प्रवृत्ति लघ्वत शब्दों की ओर अधिक है। रहीम ने अपने दोहों में विशेषण अधिकतर लघ्वत ही रखे हैं।

“बह माया कर दोष यह ।

“बहे छोट हुइ जात ।

“मिले होत रँग दून ।  
 “कितो करौ बड़ काम ।  
 “चितत ही बड़ लाभ के ।

आदि

यही नहीं, पूरवी शब्दों का प्रयोग भी रहीम ने अपने दोहों में अधिकता से किया है । यथा—

रहिमन रहिला के भली । रहिला=चना  
 सहिँ के सोच वेसाहियो । सहिँ के=जान-बूझकर  
 बीच उखारी रमसरा । रमसरा=ईख की शक़ का एक पैर  
 जाड गये से काज । जाड=जाडा, सर्दी  
 अररानी उहि ठाम । अररानी=अरराकर बैठ जाना  
 मत तोरो चटकाय । चटकाय=चटकई, जल्दी  
 रहिमन भउरिन के भये । भउरिन=भौवरें  
 गहये राखि बटोर । गहये=गरू, भारी  
 जूती खात कपाल । कपाल=कपार, माथा

इत्यादि

### काव्य-प्रियता

रहीम के काव्य का लोगो में इतना आदर क्यों है ? कारण स्पष्ट है । कवि ने जो कविता लिखी है, सरस और प्रसादगुण-पूर्ण होने के साथ ही साथ हिन्दुओं के प्रति उदारता की एक अपूर्व झाँकी उसके अन्तर्गत पाई जाती है । यद्यपि कबीर व नालक आदि सन्तों ने निगुणोपासना को ही अभीष्ट मान हिन्दू और मुसलमानों को मिलाने का प्रयत्न किया है आर इस मिलाप के लिए दोनों मतावलम्बियों की कड़ी से कड़ी आलोचना करने में वह नहीं हिचके हैं, परन्तु रहीम का मार्ग ही दूसरा है । इन्होंने

महात्मा तुलसीदास का अनुसरण किया है। इनके नीचे के दोहे पढ़ने से स्पष्ट प्रकट हो जायगा कि यह भक्ति-मार्ग के दृढ़ अनुयायी थे —

राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा उपादि ।  
 कह 'रहीम' तिहिं आपुनो, जनम गँवायो वादि ॥  
 गद्गु सरनागत राम के, भवसागर कै नाव ।  
 'रहिमन' जगत उधार कर, और न कछू उपाव ॥  
 'रहिमन' धोखे भाव से, मुख से निकसत राम ।  
 पापत पूरन परम गति, कामादिक के धाम ॥  
 'रहिमन' मनहिं लगाइ के, देखि लेहु किन कोइ ।  
 नर को बस करियो कहा, नारायन बस होइ ॥

इत्यादि

इनका काव्य कोई शृङ्खला-बद्ध काव्य नहीं है। इन्होंने अनेक विषयों पर फुटकर दोहे कहे हैं और उनमें मनुष्य के नित्यप्रति की व्यावहारिक वस्तुओं की शिक्षा की सामग्री बनाकर ऐसा सजा दिया है कि बात-बात में अनोखापन प्रकट हुआ है।







# रहिमन-विनोद

दोहावली

धर्मगुच्छ

स

मय का प्रभाव सभी पर पड़ता है, चाहे वह किसी विचार व परिस्थिति का व्यक्ति क्यों न हो। यद्यपि रहीम मुसलमान थे, पर जिस समय में वे हुए और उन्होंने कविता की उस समय एकदम राम व कृष्ण की भक्ति का श्रोत धारावाहिक रूप से बह रहा था। फिर भला उनके ऊपर उसका प्रभाव न पड़ता, यह कैसे संभव था। यही कारण है इनकी कविता में उच्च कोटि का वेदान्त ज्ञान तथा रामकृष्ण की भक्ति का अनुपम वर्णन पाया जाता है। कवि के इस वर्णन को पढ़कर सहसा, स्वर्गीय भारतेन्दुजी का, यही पद्य मुख में निकल पड़ता है—“इन्ह मुसलमान हरि जनन पै, कोटिन हिन्दू वारियँ”

देखिये, सृष्टि और सृष्टा के सम्यन्ध को कवि ने कैसे चमत्कार पूर्ण शब्दों में वर्णन किया है —

विन्दु में सिंधु समान, का कासों अचरजु कहे।

हेरनहार हेरान, 'रहिमन' आपुहि' आप में ॥ १ ॥

पाठा० १—अपुने आपते [ रहि० ]

कबीर ने इसी भाव को इस प्रकार प्रकट किया है —

हेरत हेरत हेरिया, 'कबिरा' रदो हेराय ।

बुन्द समानो समुद्र मं, मो कित हेरी जाय ॥

ईश्वर अगम्य है

'रहिमन' बात अगम्य कै, कहन सुनन कै नाहिँ ।  
जो जानन सो कहत नहिँ, कहत सो जानत नाहिँ ॥ २ ॥

ईश्वर पर भरोसा रखो

अमरबेलि विनु मूल कै, प्रतिपालत जो<sup>१</sup> ताहि ।  
'रहिमन' ऐसे प्रभुहिँ तजि, खोजत फिरिये काहि ॥ ३ ॥  
रत बन न्याधि विपत्ति में, 'रहिमन' मरउ न रोइ ।  
जो रक्षक जननी-जठर, सो हरि गये न<sup>१</sup> सोइ ॥ ४ ॥  
काम न काह आव ही, मोल 'रहीम' न लेइ ।  
बाजू टूटे बाज कै, साहेव चाग देइ ॥ ५ ॥

ईश्वर दीनवधु है

'रहिमन' बहु भेषज करत, व्याधि न छाँड़ति साथ ।  
खग मृग बसत अरोगवन, हरि अनाथ के नाथ ॥ ६ ॥  
सतत<sup>१</sup> सपतिवान काँ, सब कोऊ सब<sup>२</sup> देइ ।  
दीनवधु विनु दीन कै, को 'रहीम' सुधि लेइ ॥ ७ ॥  
समय दशा कुल देखि कै, लोग करत सनमान ।  
'रहिमन' दीन अनाथ के, तुम धिन को भगवान ॥ ८ ॥  
दीन<sup>१</sup> लखै सब जगत काँ, दीनहिँ लखै न कोइ ।  
जो 'रहीम' दीनहि लखे, दीनवधु सम सोइ<sup>२</sup> ॥ ९ ॥

पाठ० ३—१ ई [ रहि०, २० ] ४—१ कि [ रहि०, २० दो० ]

७—१ सतत सपति जान के, सब को सब कबु देत [ रहि०, २० ]

२ मरु [ २० दो० ]

९—१ दीन सयन को छलत ई [ २०, गहि० ] २ होय [ रहि०, २० ]

### राम-महिमा

राम नाम जायो नहीं, जान्यो सदा उपादि ।  
 कह 'रहीम' तिहि आपुनो, जनम गँवायो बादि ॥ १० ॥  
 'रहिमन' राम न उर धरै, रहत प्रिय लपिटाइ ।  
 पसु सरि खात सवाद सो, गुरु गुलियाये खाइ ॥ ११ ॥  
 गहु सरनागत राम के, भवनागर के नाव ।  
 'रहिमन' जगत उधाग कर, और न फल उपाय ॥ १२ ॥  
 'रहिमन' धोखे भाय से, मुख ते निकसत राम ।  
 पावत पूरन परम गति, कामादिक के धाम ॥ १३ ॥  
 राम नाम जानेउ नहीं, भइ पूजा में हानि ।  
 कह 'रहीम' क्यों मानि हैं, जम के किंकर कानि ॥ १४ ॥  
 मागे मुकुटि न का गयो, केहि न त्यागियो साथ ।  
 भगत आगे सुख लहयो, ते 'रहीम' रघुनाथ ॥ १५ ॥  
 दुख नर सुनि हॉसी करे, नाहि धरावत धीर ।  
 कही सुने सुनि दुख हरे, 'रहिमन' वे रघुवीर ॥ १६ ॥  
 मनि मानिक महँगे किये, समते तृन जल नाज ।  
 'रहिमन' याते कहत हैं, राम गरीब नवाज ॥ १७ ॥

१० ११—१ राम नाम नहि लेत हैं, रहो प्रिय लपिटाय ।

धास चरै पसु आप ते, गुड़ गुलियाये खाय ॥ [१० दो०]

१३—इसीके समानार्थक महाराम तुलसीदासजी का यह दोहा है —

'तुलसी' जिनके मुरान मे, धोगेहु निकसत राम ।

तिनके पग की पगतरी, भरे तन को चाम ॥

१७—इसी भाव को 'तुलसीदास' ने निम्न प्रकार व्यक्त किया है —

मनि मानिक महँग किये, सहँग तृन जल नाज ।

'तुलसी' ये तो जानिये, राम गरीब-नवाज ॥

‘रहिमान’ हम तुम सों करी, करी करी जो तीर ।  
बाढे दिन के भीत सब, गाढे दिन रघुवीर ॥ १८

### श्रीकृष्णचन्द्रजी के प्रति

तैं ‘रहीम’ मन आपुनो, कीन्हों चाह चकोर ।  
निसि वासर लाग्यो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर ॥ १९ ॥

‘रहिमान’ कोऊ का करै, ज्वारी चोर लवार ।  
जो पत-राखनहार है, माखन-चाखनहार ॥ २० ॥

### लक्ष्मी की अस्थिरता

कमला धिर न ‘रहीम’ कह, यह जानत सब कोइ ।  
पुरुष पुरातन के बधू, क्यों न चचला होइ ॥ २१ ॥

कमला धिर न ‘रहीम’ कह, लखत अधम जे कोइ ।  
प्रभु कैसो आपनि कहैं, क्यों न फजीहति होइ ॥ २२ ॥

पात्र० १८—१ जैमी तुम हम सों करी [ रहि०, २० ] । ‘२० दो’ के  
‘जैसी’ के स्थान पर ‘ऐसी’ है ।

१८—२ हो [ रहि०, २० ]

पात्र० १९—१ जिहि [ २० ]

२०—इस भाव को ‘रसखान’ ने इस प्रकार कहा है —

कहा करै ‘रसखान’ को, कोऊ चुगल लवार ।  
जो पै राखनहार ह, माखन चाखनहार ॥

चन्द्र-कलङ्क

'रहिमन' जेहि क बाप कर, पानी पियत न फाइ ।  
तेहि कै गइल अकास लों', क्यों न कालिमा होइ ॥ २३ ॥

भक्ति

वर्तनु 'रहीम' है कर्म-वस, मनु राखौ उहि' ओर' ।  
जल में उलट्टी नाव ज्यों, खेचत गुन के जोर ॥ २४ ॥  
धन दारा औ सुतन में', रहत लगाये चित्त ।  
'क्यों 'रहीम' खोजत नहीं, गाढे दिन कर मित्त ॥ २५ ॥  
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपुन नाहिं ।  
'रहिमन' गलि है साँकरी, दोनो नहिं ठहराहिं ॥ २६ ॥  
भजउँ तो काका मैं भजउँ, तजउँ तो को है आन ।  
भजन तजन ते विलग है, तेहि 'रहीम' त जान ॥ २७ ॥

श्लो० २३—१ म [ १० ]

(२३) इसी भाव पर 'जादव' ने निम्न प्रकार कहा है —  
'जादव जाके नीर को, क्यों न अँचवत कोय ।  
ताको पूत कपूत यह, कस न कलकी होय ॥

श्लो० २४—१ ओहि [ रहि० ], २ थोर [ १० श्लो० ]

श्लो० २५—१ सो, लग्यो रहं नित चित्त ।

२ नहिं 'रहीम' कोऊ लख्यो । [ रहि० ]

२७—'कबीर' ने इसी भाव पर इस प्रकार कहा है —  
भजू तो को हें भजन को, तजू तो को है आन ।  
भजन तजन के मध्य में, सो 'कबीर' मन मान ॥  
ओर 'मुलसीदास' ने निम्न प्रकार कहा है —  
घर कीन्हें घर जात हें, घर छोड़े घर जाय ।  
'मुलसी' घर-न्यन बीच ही, राम-प्रेम पुर छाष ॥

'रहिमन' मनहि लगाइकै, देखि लेहु किन कोइ ।

नर काँ बस करिवो कहा, नारायन बस होइ ॥ २८ ॥

अजन देहँ तो किरकिरी, सुरमा दियो न जाइ ।

जिन आँखिनसों हरिलख्यो, 'रहिमन' बलिवलिजाइ ॥ २९ ॥

स्वासह तुरिय जो उच्चरै, तिय है निहचलचित्त ।

पूत परा घर जानिये, 'रहिमन' तीन पचित्त ॥ ३० ॥

भक्ति का भगवान के प्रति उपालम्भ

'रहिमन' कीन्ही प्रीति, साहब काँ भावै नहीं ।

जिनके अगनित मीत, हमै गरीबन को गनै ॥ ३१ ॥

परि रहिवो मरिवो भलो, सहिवो कठिन कलेश ।

वावन हुइ बलि काँ छल्यो, भल दीन्हेउ उपदेश ॥ ३२ ॥

खेचि चढनि ढीली दरनि, कहहु कौन यह प्रीति ।

आज काल्हि मोहन गही, वसु-दिया कै रीति ॥ ३३ ॥

जो 'रहीम' करिवो हुतो, ब्रज कर यहै हवाल ।

तो<sup>२</sup> नाहक कर पर धन्यो, गोवर्धन गोपाल ॥ ३४ ॥

हरि 'रहीम' पेसी करी, ज्यों कमान सर-पूर ।

खेचि आपुनी ओर को, डारि दियो पुनि दूर ॥ ३५ ॥

ज्ञान

ज्यों<sup>१</sup> 'रहीम' इक<sup>२</sup> दीप ते, प्रगट सबै निधि<sup>३</sup> होय ।

तनु-सनेह कैसे दुरै, दग-दीपक जहँ<sup>४</sup> देय ॥ ३६ ॥

पाठा० २८—१ मनहि लगाइ 'रहीम' प्रभु ।

पाठा० ३४—१ यही [ २० ], २ तो क्त मानहि दुख दियो, गिरवरष

गोपाल [ २० ] । 'नाहक' की जगह 'काहे' [ रहि०

पाठा० ३६—१ कहि, ३ दुति, ४ जर [ रहि० ] ।

२ गति [ २० दो० ]

'यों 'रहीम' तनु-हाट म, मनुआ गयो विक्राय ।  
 'ज्यों' जल में काया परे, छाया भीतर नाँय ॥ ३७ ॥  
 जो 'रहीम' तनु हाथ है, मनसा 'कहुँ किन जाहिँ ।  
 जल में ज्यों छाया परे, काया भीजति नाहिँ ॥ ३८ ॥  
 कहु 'रहीम' केतिक रही, केतिक गई विहाय ।  
 माया ममता मोह में, अत चले पछिताय ॥ ३९ ॥  
 'रहिमन' भेषज के किये, फाल जीत जो जात ।  
 बडे बडे समर्थ भये, तौ न कोउ मरि जात ॥ ४० ॥

### माया

'रहिमन' उतरे पार, भार झोंकि के भार में ॥  
 जिनके सिर पर भार, वे ' नूडे मँझधार में ॥ ४१ ॥  
 चरन छुप मस्तक छुप, तऊ ' न छोडति पानि ।  
 'हिये छुप्त प्रभु छाडिदे', कहु 'रहीम' का जानि ॥ ४२ ॥

### देह की असारता

'रहिमन' गठरी धूरि कै, रही पवन ते पूरि ।  
 गाँठि युक्ति कै खुलि गई, अन्त धूरि कै धूरि ॥ ४३ ॥

पाग० ३७—१ ज्यों जल में छाया परे, काया भीतर नाँय । [ रहि० ]

पात्र० ३८—१ मनुवा गये ते काहि [ र० दो० ]

पाग० ४१—१ पै [ रहि० ]

'अहमद' के यहाँ यह दोहा इस रूप में पाया जाता है ।

'अहमद' उतरे पार, भार झोंकि सब भार में ।

जाके सिर पर भार, वे नूडे मँझधार ॥

पाग० ४२—१ तेहु नहि । २ छोडि देँ [ रहि० ]



कागद को सो पूतरा, सहजहिमें घुलि जाय ।  
 'रहिमन' यह अचरज लखो, सोऊ खंचत वाय ॥ ४४ ॥  
 ते 'रहीम' अत्र कौन है, एती खंचत वाय ।  
 'खस कागद को पूतरा, नमी माहिं खुलि जाय ॥ ४५ ॥

ससार कर्मक्षेत्र है

सोदा करो सो करि चलहु, 'रहिमन' याही हाट' ।  
 फिर सोदा पैहो नहीं, दूरि जान है वाट ॥ ४६ ॥

ससार श्रावागमन का क्षेत्र है

सदा नगाग कूचकर, वाजत आठो जाम ।  
 'रहिमन' या जग आइ कै, को करि रहा मुकाम ॥ ४७ ॥

(४४) इस भाव पर 'उस्मान' कवि ने निम्न प्रकार कहा है ।

कोन भरोसा देह का, छाड़टु जतन उपाइ ।  
 कागद की जस पूतरी, पानि परे घुलि जाइ ॥

पाठा० ४६—१ वाट [ रहि० ]



## शृङ्गार-गुच्छ

\* \* \* \* \* टक यह न समझ कि रहीम कवि उच्च कोट  
 \* \* \* \* \* की फिलोसफी ही छाँटते रहे हैं । उन्होंने  
 \* \* \* \* \* पा शृंगार विषयक यद्यपि बहुत थोड़े दोहे  
 \* \* \* \* \* कहे हैं, परन्तु जो कहे हैं वे पाशकों की  
 \* \* \* \* \* तथियत में एक खास तरह की चुल्लुलाहट  
 \* \* \* \* \* कर देते हैं । देखिए —

२४ कुच-वर्णन

मनसिज माली के उपज, 'रहिमन' कही न जाय ।  
 फल स्यामा के उर लगे, फूल स्याम उर माँय ॥ ४८ ॥  
 जो अनुचित कारी तिन्हें, लग अक परिनाम ।  
 लखे उरज उर-वेधियत, क्यों न होय मुख स्याम ॥ ४९ ॥

नेत्र-वर्णन

'रहिमन' मन महराज क, दृग सां नहीं दिवान ।  
 देखि जाहि रीझें नयन, मन तेहि हाथ विकान ॥ ५० ॥  
 'रहिमन' चोट सु तीर के, चोट खाइ वचि जाइ ।  
 नेन-वान के चोट ते, धनवन्तरि न वचाइ ॥ ५१ ॥  
 यों 'रहीम' जग मारियो, नेन-वान के चोट ।  
 भगत भगत कोइ वचि गये, चरन-कमल के ओट ॥ ५२ ॥

पृ० ५०—१ मन से कहाँ 'रहीम' प्रभु, दृग सां कहाँ दिवान ।

देखि दृगन जो आदरै, मन तेहि हाथ विकान ॥

[ रहि०, २० दो० ]

नैन सलेने अधर मधु, कहु 'रहीम' घटि कौन ।  
 मीठा भाव लौन पर, अरु मीठे पर लौन ॥ ५३ ॥  
 यौंकी चितवनि चितगढी, सूधी तो कह्यु धीम ।  
 गरमी ते बढि होत दुख, काढि न कढत 'रहीम' ॥ ५४ ॥

## कमल

पसरि पत्र झपहिँ पितहिँ, समुचिदेत ससि सीत ।  
 कह 'रहीम' कुलकमल के, को बेरी को मीत ॥ ५५ ॥  
 रहिमन' सो न कहू गनै, जासो लागे नैन ।  
 सहिँके सोच बेसाहियो, गयो हाथ कर चैन ॥ ५६ ॥  
 विरह रूप घन तम भयो, अवधि आस उद्योत ।  
 ज्यौं 'रहीम' भादों निसा, चमकि जात खद्योत ॥ ५७ ॥  
 प्रीतम छवि नैनन वसी, पर छवि कहाँ समाइ ।  
 भरी सराय 'रहीम' लखि, आप पथिक फिरि जाइ ॥ ५८ ॥  
 कहा करो बैकुण्ठ ले, कल्पवृक्ष के छौंह ।  
 'रहिमन' ढाक सराहिये, जो प्रीतम-गल-छौंह ॥ ५९ ॥  
 जे सुलगे ते बुझि गये, बुझे ते सुलगे नाहिँ ।  
 'रहिमन' दाहे प्रेम के, 'बुझि बुझि के सुलगाहिँ ॥ ६० ॥

( ५८ ) 'रसनिधि' ने इस भाव को यों व्यक्त किया है —

पथिक आपने पथ लगे, इहाँ रहा न पुसाइ ।

'रसनिधि' नेन सराय में, बस्यो भावतो आइ ॥

पाठा० ५९—१ 'रहिमन' दाख सुहाबनो, जो गल पीतम-याह ॥ [रहि०]

यह दोहा अहमद के दोहों में भी पाया जाता है । अन्तर केवल

'रहिमन' की जगह 'अहमद' है ।

पाठा०-६०—१ बुझि-बुझि [ २० ]

याते जान्यो मन भयो, जगि वरि भस्मवनाइ ।  
 'रहिमन' जाहि लगाइये, सो रूपो हुइ जाइ ॥ ६१ ॥  
 रूप 'रहीम' विलोकतहिँ, मन जहँ जहँ लगि जाइ ।  
 थान्यो ताकहिँ आपवहु, लत लुडाइ-लुडाइ ॥ ६२ ॥  
 'रहिमन' इक दिन वे रहँ, वीच न सोहन हार ।  
 वायु जो ऐसी बहि गई, वीचन परे पहार ॥ ६३ ॥

६२—१ रूप विलोकि 'रहीम' तहँ [ रहि० ]

रूप 'रहीम' विलोकि तेहि [ र० ]

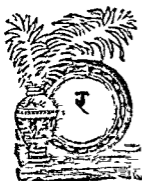
२ थाके [ रहि०, र० ], थाके ना कहि [ र० दो० ]

६३—घनानन्द ने इस भाव को यो व्यक्त किया है—

“तत्र हार पहार ने लागत हे, अय जाय कै वीच पहार परे”



## नीति-गुच्छ ६



हीम ने सबसे अधिक दोहे नीति विषयक कहे हैं। इस विषय पर कवि की अपनी निगाह व बारीकी देखते ही बन आती है। अनुभव भी कितना बड़ा चढ़ा है, इसका अनुमान इसी एक बात में किया जा सकता है कि कवि की निगाह छोटी से छोटी बात में लेकर बड़ी में बड़ी बात तक पहुँची है और सब पर ही प्रकाश डाला है।

पाठक कवि की अनेकरी सूझ और ज्ञान-बात में चोज़ पैदा करने वाली प्रतिभा-पूर्ण कविता को पढ़कर स्वयं ही अनुमान कर सकेंगे कि कवि ने गागर ग सागर भरने का चमत्कार पूर्ण प्रयत्न किया है।

**परोपकारी जन धन्य है**

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियत<sup>१</sup> न पानि ।  
 कहि 'रहीम' पर काज हित, सम्पति सुचहि<sup>२</sup> सुजान ॥ ६४ ॥  
 वे<sup>३</sup> 'रहीम' नर धन्य हैं, पर उपकारी अंग ।  
 बाँटनवारी के लगे, ज्यो मेहँदी के रंग ॥ ६५ ॥

पाठा० ६४—१ पियहि न पान [ रहि०, र० ]

० धरै [ र० दो० ]

महाराजा तुलसीदास जी का निम्न दोहा इसी का समानार्थक है —

'तुलसी' सन्त सुअग्र तरु, फूल फलहि पर हेत ।

इतते ये पाहन हनै, उतते वे फल देत ॥

पाठा० ६५—१ यों रहीम सुख होत है, उपकारी के अंग । [ र० ]

'रहिमन' पर उपकार के, करत न पारै' बीच ।  
माँस डियो सिवि भूप ने, दीनों हाड दधीच ॥ ६६ ॥

### घट-बरेह

॥ आजन' काज 'रहीम' कह, गाढे वधु सनेह ।  
जीरन होतहिँ पंड ज्यों, धाँभे बरहिँ बरेह ॥ ६७ ॥

### जाति-गौरव

यों 'रहीम' सुख होत है, बढत देखि निज गोत ।  
ज्यो बड़गी अँखियोँ'निरखि, अँखिन काँ सुख होत ॥ ६८ ॥  
'रहिमन' अपने गोत कहँ, सबै चहत उतसाह ।  
मृग उछ्यन आकास कहँ, भूमि खनत वाराह ॥ ६९ ॥

### दान ही जीवन है

तबहीं लागि जीयो भंला, दीवो पर न धीम ।  
चिन' दीवो जीयो जगत, हमहिँ न रुचै 'रहीम' ॥ ७० ॥

पाठा० ६६—१ यारी [ रहि० ]

६७—१ भाक्त काम 'रहीम' है, वधु मिल गहि मोह ।  
जीरन पेड़हि के भये, राखत बरहिँ बरोह ॥  
[ २० ]

६८—१ सुख 'रहीम' अति होत है, प्रदत आपने गोत ।  
[ २०, दो० ]

० अँखियाणि लखि [ २० दो० ]

७०—१ जग में रहिवो चुचित गति, उचित न होय 'रहीम'  
[ रहि०, २०, दो० ]

समय लाभ सम लाभ नहीं, समय चूक सम चूक ।  
चतुरन चित 'रहिमन' लगे, समय चूक कै हूक ॥ ९५ ॥

हस की इच्छा मानसरोवर पर क्यों है ?

✓ मानसरोवर ही मिले, हसनि मुकना भोग ।  
सफरिन भरे 'रहीम' सग, बरु<sup>१</sup>-बालकनहिं जोग ॥ ९६ ॥

### राज्य-प्रणाली

'रहिमन' राज सराहिये, ससि<sup>१</sup> सम सुखद जो होइ ।  
कहा बापुरो<sup>२</sup> भानु है, तपे<sup>३</sup> तुरेयनि खोइ ॥ ९७ ॥

### गम्भीरता

भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप ।  
'रहिमन' नभ<sup>१</sup> ते भूमि लो, लखौ तौ एकहिं रूप ॥ ९८ ॥

### प्रेम-प्रीति

प्रेम पथ पेसा कठिन, सब कोउ निवहत नाहिं ।  
'रहिमन'<sup>१</sup> मैन-नुरग चढ़ि, चलियो पावरु माहिं ॥ ९९ ॥

९५—इसी भाव का तुलसीदास जी का भी यह दोहा है —

लाभ समय को पालियो, हानि समय की चूक ।

सग बिचारै चारु मत, सुदिन कुदिन दिन दूक ॥

पाठा० ०६—१ विपुल बलाकनि [ २० ]

९७—१ जो त्रिघु की बिधि होय [ २० दो० ]

२ निगोड़े तरनि को [ २० दो० ]

३ तप्यो [ रहि०, २०, २० दो० ]

९८—१ गिरि [ रहि०, २० दो० ]

९९—१ चढ़ि कै मैन-नुरग पर [ २०, २० दो० ]

'रहि०' में 'रहिमा' की जगह 'लालन' है ।

- 'रहिमन' मारग प्रेम कर, मत<sup>१</sup> मतिहीन मँझाव ।  
 जो डिगिहा तो फिर कहँ, नहिँ धरिये को पाँव ॥ १०० ॥ ✓  
 'रहिमन' धागा प्रेमकर, मत तोरउ<sup>१</sup> चटकाइ ।  
 दूटे से फिरि ना मिल, मिले गाँठि परि जाइ ॥ १०१ ॥  
 मीन काटि जल धोइये, खाये अधिक पियास ।  
 'रहिमन' प्रीति सराहिये, मुयेउ मीत कै आस ॥ १०२ ॥  
 'रहिमन' प्रीति सराहिये, मिले होत रँग दून ।  
 ज्यों जरदी हरदी तजै, तजै सपेदी चून ॥ १०३ ॥  
 जलहिँ मिलाइ 'रहीम' ज्यों, कियो आप सम छीर ।  
 भँगवाहि आपुहि आपु लखि, सकल आँच क भीर ॥ १०४ ॥  
 'रहिमन' प्रीति न कीजिये, जस खीरा ने कीन ।  
 ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँके तीन ॥ १०५ ॥  
 'रहिमन' खोजो ऊख में, कहाँ न रस कै खानि ।  
 जहाँ गाँठि तहँ रस नहीं, यहाँ प्रीति कै हानि ॥ १०६ ॥

पाद्य० १००—१ त्रिन वृत्तै मति जाव । [ २०, २० दो० ]

१०१—१ तोड़ो छिटकाय [ रहि० ]

१०२—इसी भाव पर एक अन्य कवि न निम्न प्रकार कहा ह —  
 प्रेमी प्रीति न छाँड़हीं, होत न प्रन ते हीन ।

मरे परे ह उदर म, जल चाहत हे मीन ॥ [सू० स०]

१०३—वृन्द ने इस भाव को निम्न प्रकार व्यक्त किया हे —

ऊपर दरमै सुमिल सी, अन्तर अनमिल आँक ।

कपटी जन की प्रीति ह, खीरा की मी फाँक ॥

१०६—१ 'रहिमन' जग की रीति, म देखी रस ऊख में ।

ताहू में परीति, जहाँ गाँठि तहँ रस नहीं ॥

[ रहि०, २० दो० ]



'रहिमन' यह न सराहिये, लेन-देन के प्रीति ।  
 प्रानहिं वाजी राखिये, हारिहोइ के जीति ॥ १०७ ॥  
 'रहिमन' वहाँ न जाइये, जहाँ कपट कर हेत ।  
 हम तन डारत<sup>१</sup> देकुली, सीचत आपन<sup>२</sup> खेत ॥ १०८ ॥  
 वहे प्रीति नहिं रीति वह, नहीं पाछिले हेत ।  
 घटत घटत 'रहिमन' घटै, ज्यो क<sup>३</sup> लीहैं रेत ॥ १०९ ॥  
 कह 'रहीम' या जगत तें, प्रीति गई दै टेरि ।  
 अब<sup>४</sup> रहीम नर नीच में, स्वार्थे-स्वार्थ हेरि ॥ ११० ॥  
 'सब कहें सब कोऊ करै, के सलाम के राम ।  
 हित 'रहीम' तव जानिये, जय कछु अटकै काम ॥ १११ ॥  
 जहाँ गाँठि तहें रस नहीं, यह<sup>५</sup> जानत सब कोय ।  
 मड़येतर के गाँठि में, आठ<sup>६</sup> गाँठि रसहोय ॥ ११२ ॥  
 दादुर भोर किसान मन, लगे रहैं घन माहिं ।  
 पे 'रहीम' चातक रटनि, सुरवर के कोउ नाहिं ॥ ११३ ॥

पाठा० १०७—१ प्रानन [ रहि०, २० ]

१०८—१ डारत [ २०, २० दो० ]

२ अपनो [ रहि०, २० ]

१११—१ रहि [ रहि० ]

१११—१ सब कोऊ सब सों कर, राम जुहार सलाम ।

हित अनहित तत्र जानिये, जादिन अटकै काम ॥

[ २० ]

११२—१ यह 'रहीम' जग जोइ [ रहि०, २० दो० ]

० गाँठि-गाँठि [ रहि०, २०, २० दो० ]

कोकिल

✓ पावस देखि 'रहीम' मन, कायल साधी मोन ।  
अब दादुर वक्ता भये, हम कहँ पूछत कान ॥ ११४ ॥

दृष्ट प्रकृति

[मन्दन के मारेहु<sup>१</sup> गये, अगुन गुन<sup>२</sup> न सिराहिं<sup>३</sup> ।  
ज्यों 'रहीम' बाधहु<sup>४</sup> बधे, मरहा<sup>५</sup> हुइ अधिकाहिं ॥ ११५ ॥  
'रहिमन' लाख भलीकये, अगुनी अगुन न जाइ ।  
राग सुनत पय पियत ह, साँप सहज धरि खाइ ॥ ११६ ॥

कुम्हार का चाक

'रहिमन' चाक कुम्हार कर, माँगे दिया न देइ ।  
छेद में डडा टारि कै, चहै नाई लइ लेइ ॥ ११७ ॥

पाठ० ११४—तुलसीदासजी ने इसी भाव पर निम्न प्रकार कहा है—

'तुलसी' पावस के समय, धरी कोकिलन मान ।  
अब तो दादुर थोलि है, हमहि पूछि हे कान ॥

११५—१ मरिहू [ रहि० ], २ गनि [ र० ], ३ सराहि  
[ रहि० ]

४ बाँधहु बँधे [ रहि० ], ५ मरहा [ रहि०, र० ]

११६—महात्मा तुलसीदासजी की निम्न चौपाई का भाव भी ऐसा ही है—

भलहु करै खल पाय सुमग ।  
मिटहि न मलिन स्वभाव अभगू ॥

## देसी स्वान

नहिं 'रहीम' कन्ठ रूप गुन , नहिं मृगया अनुराग ।  
 देसी स्वान जो राखिये , भ्रमत भूख ही लाग ॥ ११८ ॥  
 मूर्ख

'रहिमन' नीर पखान , भीजै<sup>१</sup> पे सीझै नहीं ।  
 तैसेइ मूर्ख ज्ञान , वूझै पे सूझ नहीं ॥ ११९ ॥  
 मूढ-मडली में सुजन , ठहरत नहीं विसेखि ।  
 स्याम कचन से मेत ज्यों , दूरि कीजियत देखि ॥ १२० ॥

## पेट

✓ 'रहिमन' पेटे मों कहत , क्यों न भये तुम पीठि । ✓  
 भूखे मान विगारहु , भरे विगारहु डीठि ॥ १२१ ॥  
 'रहिमन' में<sup>१</sup> या पेट सों , बहुत कहेउ समुझाइ ।  
 जो नू अनखाये रहै , का<sup>२</sup> काऊ<sup>३</sup> अनखाइ ॥ १२२ ॥  
 बड़े पेट के भरत में<sup>१</sup> , है 'रहीम' दुरावाडि ।  
 या ते हाथी हहरि कै , दये दाँत दुइ काडि ॥ १२३ ॥

पाठा० ११९—१ बृह<sup>१</sup> [ रहि० ]

१२१—१ 'रहिमन' कहत सु पेट सों , क्या न भयो तू पीठ ।  
 रीते अनरीते करत , भरे विगारत डीठ ॥

[ रहि०, १० ]

१२२—१ भैया [ २०, २० दो० ], २ कय [ २० ]

३ काह [ २० दो० ]

१२३—१ को [ २० दो० ]

'रहिमन' बहरी वाज, गगन चढ़ै फिरि क्योतरै<sup>१</sup> ।  
पेट अधम के काज, फेरि आइ बदन परै ॥ १२४ ॥

### मौर

काज परे कछु और है, काज सरे कछु ओर ।  
'रहिमन' भउरिन के भये, नदी सिरावत मौर ॥ १२५ ॥

### बँवूर

आपु न काहू काम के, डारपात फल मूर<sup>१</sup> ।  
ओरन हँ<sup>२</sup> रोकत फिर, 'रहिमन' कूर<sup>३</sup> बँवूर ॥ १२६ ॥

### चिन्ता

अन्तर दाप लगी रहै, धुआँ न प्रगट सोइ ।  
'कै जिय आपन जानही, कै जिहि<sup>२</sup> धीती होइ ॥ १२७ ॥  
'रहिमन' कठिन चिताहुते<sup>१</sup>, चिन्ता कहँ चितचेत ।  
चिता बहति निर्जाँव कहँ, चिन्ता जीव समेत ॥ १२८ ॥

### पुनर्जन्म

'रहिमन' सुधि सपते भली, लगै जो बारम्बार ।  
त्रिपुरे मानुष फिरि मिलैं, यहै जान अवतार ॥ १२९ ॥

पाठ्य० १२४—१ तिरै [ रहि० ]

१२६—१ फूल [ रहि० ], २ को [ रहि०, १० ]

३ पेड़ [ रहि० ]

१२७—१ कै जिय जाने आपुनो [ रहि०, १० ]

२ जासिर [ रहि० ]

१२९—१ चितान [ रहि० ]

## चापलूसी

छोटे' काम बड़े करे, तौ न बड़ाई होइ ।  
ज्यो 'रहीम' हनुमत कहें, गिरधर कहै न कोइ ॥ १३० ॥

अह

अड न बौड 'रहीम' कह, देखि सचिक्रन पान ।  
हस्ती-ढक्का कुल्हडिन, सहैं ते तरुण आन ॥ १३१ ॥

## खिजाव

✓ 'रहिमन' थोरे दिनन कहें, कौन करै मुँह स्याह ।  
नहीं छलन कहें पर तिया, नहीं करन कहें व्याह ॥ १३२ ॥

## दीनता

दिव्य दीनता के रसहि, का जानै जग अधु ।  
भली विचारी दीनता, दीनवधु से बधु ॥ १३३ ॥  
कहि 'रहीम' धन बढि गटे, जाति धनिन कै वात ।  
घटै बढै उनकर कहा, घास बँचि जे खात ॥ १३४ ॥  
बढत 'रहीम' धनाढ्य धन, धनहु धनी कर जाइ ।  
घटै बढै तिहि कग कहा, भीख मागि जो खाइ ॥ १३५ ॥

## मृदङ्ग

चारा प्यारा जगत में, छाला हित कइ लेइ ।  
ज्यों 'रहीम' आटा लगै, त्यों मृदङ्ग सुर देइ ॥ १३६ ॥

पाठा० १३०—१ थोरो किये बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होइ ।

[ रहि०, २० दो० ]

१३६—लाला भगवानदीन ने इसी भाव पर निम्न प्रकार कहा है —  
राजी होय न जगत में, को जन भोजन पाय ।  
मिरदगहु मुख लेप लहि, मधुरे सुरन यताय ॥

कुपूत

जो 'रहीम' गति दीप के, फूल कपूत के सोइ ।  
 वारे उजियारा करै, बडे अंधेरो होइ ॥ १३७ ॥

सुपूत

जो 'रहीम' गति दीप के, सुत सपूत के सोइ ।  
 बडे उजेरो तेहि रहै, गये अंधेरो होइ ॥ १३८ ॥

हाथी

'रहिमन' करि सम बल नहीं, मानत प्रभु के धाक ।  
 दौन दिखायत दीन हुइ, चलत घिसावत नाक ॥ १३९ ॥  
 छाग' उछारन सीस पर, कहु 'रहीम' किहि काज ।  
 जिहि रज मुनि पतनी तरी, तिहि खोजत गजराज ॥ १४० ॥

निकट सम्यन्ध

नात नेह दूरी भली, लेा 'रहीम' जिय जानि ।  
 निकट निरादर होत है, ज्यों गडही कर पानि ॥ १४१ ॥

पाग० १३७—१ ज्यों [ २० ]

१४०—१ धूर धरत नित सीस पे [ रहि०, २० ]

गन रज दूँइत गलिन म [ २० दो० ]

१४१—सुलसीगसजी ने इसी भावको इस प्रकार व्यक्त किया है —

मयाग दूरहि रहे, 'दुलसी' किये विचार ।

निकट निरादर होत है, जिमि सुरमरि घर वार ॥

### बेवसी की दशा

खर्च<sup>१</sup> बढ़ो राजी घटी, नृपतिनिठरमनकीन ।  
 'रहिमन'<sup>२</sup> वे नर का करें, ज्यों थोरे जल मीन ॥ १४२ ॥  
 सर सूखे पछी उड़ै, औरे सरन समाहिं ।  
 मीन दीन विनु<sup>१</sup> पन्छ के, कहु 'रहीम'<sup>२</sup> कहँ जाहिं ॥ १४३ ॥  
 कहु 'रहीम' कैसे बनै, अनहोनी हुइ जाइ ।  
 मिलो रहै ओ ना मिलै, तासों कहा वसाइ ॥ १४४ ॥

### भावी प्रबल है

जो 'रहीम' भावी<sup>१</sup> कतों, होति आपुने हाथ ।  
 राम न जाते हरिन संग, सीय<sup>२</sup> न रावन साथ ॥ १४५ ॥  
 जो 'रहीम' होसी कहँ, प्रभु गति अपने हाथ ।  
 तौ कौ ध्रों केहि मानतो, आपु बड़ाई साथ ॥ १४६ ॥  
 जेहि<sup>१</sup> नभ सरु पजर कियो, 'रहिमन'वल अउसेप ।  
 सो अर्जुन वैराट घर, रहे नारि के भेष ॥ १४७ ॥

पाठा० १४२—१ खर्च बढ़यो उद्यम घट्यो [ रहि० ]

२ कहु 'रहीम' कैसे जिये, थोरे जल की मीन [ रहि० ]

१४३—१ त्रेपरन की [ र० ]

२ कहँ [ रहि० ]

१४५—१ भावी कहु होती अपने हाथ [ र० दो० ]

२ सिया [ र० दो० ]

१४७—१ महि [ रहि० र० ]

- लिखी 'रहीम' लिलार में, भई<sup>१</sup> आइ कै आन । ✓  
 १। मद कर काटि बनारसी, पहुँचे मगहर<sup>२</sup> थान ॥ १४८ ॥  
 निज कर क्रिया 'रहीम' कह, सुधि भारी के हाथ ।  
 पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥ १४९ ॥  
 भारी ऐसी प्रचल है, कह 'रहीम' सत्र<sup>३</sup> जान ।  
 भारी केहि<sup>४</sup> का ना दही, भारी<sup>५</sup> दह भगवान ॥ १५० ॥  
 भारी या उनमान कै, पाड्य बनह 'रहीम' ।  
 जदपि गौरिसुनि गइ है, डरु है मभु अर्जाम ॥ १५१ ॥  
 ज्यों नाचति कठपूतरी, कर्म नचावत गात ।  
 अपने हाथ 'रहीम' त्यो<sup>६</sup>, नहीं आपुन हान ॥ १५२ ॥

## सासारिक ज्ञान

- जो विषया सतन तजी, मूढ ताहि लपटात ।  
 ज्यों नर डारत घमन करि, स्वान स्वादु मो खात ॥ १५३ ॥

१४८—१ हुई आन की आन [ २० ]

० मगहस्थान [ २० दो० ]

मगर-स्थान [ रहि० ]

१५०—१ यह [ रहि० ], ० काहू [ रहि०, २०, २० दो० ]

३ दही पूर [ २०, २० दो० ]

१५२—१ ज्यों [ रहि० ]

१५३—करीर ने इस भाव पर इस प्रकार कहा है —

जो विभूति साधुन तजी, तेहि विभूति लपटाय ।

जोन घमन करि डारिया, स्वान स्वादु करि खाय ॥

जो, १४८ उग्री ने ही उग्री ।



ससि<sup>१</sup> के सीतल चाँदनी, सुन्दर<sup>२</sup> सबहिं सुहाइ ।

लगै चोर चित म लठी, घटि<sup>३</sup> रहीम<sup>४</sup> मन आइ ॥ १५४ ॥

१। सरवर<sup>१</sup> के रंग एक मे, प्रीति<sup>२</sup> बाढिनहिं धीम ।

पे मराल के<sup>३</sup> मानसर, एकै टाग<sup>४</sup> रहीम<sup>५</sup> ॥ १५५ ॥

सीत हंरत तम हंरत नित<sup>१</sup>, भुवन भरत नहिं चूक ।

रहिमन<sup>२</sup> तेहि रविकर कंहा, जो घटि लखै उल्लूक ॥ १५६ ॥

जद्यपि अवनि अनेक हैं, तोयवंत<sup>१</sup> सर ताल ।

रहिमन<sup>२</sup> मान सरोवरहिं<sup>३</sup>, मनसा करत मराल ॥ १५७ ॥

पाठा० १५४—१ ससि की सुखद सु चाँदनी, सुदर सबे सुहाति  
लगी चोर चित ज्यों लठी, घट रहीम मन काँति

[ २० दो० ]

पाठा० १५५—१ यादन प्रीति न धीम [ रहि० ]

२ को [ रहि० ]

१५६—१ जेहि [ २० दो० ],

२ कछु रहीम रवि घटि गयो

जो घटि लख्यो उल्लूक [ २० दो० ]

[ १५६ ] वृन्द कवि का यह टोहा भी इसी भाव का है —

मूख गुन समुझै नही, तो न गुनी में चूक ।

कहा भयो दिन को विभो, देखै जो न उल्लूक ॥

पाठा० १५७—१ कूपवत [ रहि० ], २ एकै मानसर [ २० ]

[ १५७ ] तुलसीदास जी ने इस भाव को निम्न प्रकार व्यक्त किया है —

‘यद्यपि अवनि अनेक हैं, तोय तासु रस ताल ।

सतत तुलसी मानसर, तदपि न तजहि मराल ॥

ज्ञान

'रहिमन' विद्या बुधि नहीं, नहीं धरम जस दान ।  
जन्म वृथा भू पर धरेड, पसु विनु पूछ विपान ॥ १५८ ॥

सबल की निर्बलता

जे 'रहीम' विधि बड़ किये, को कहि दूषण काढि ।  
चन्द दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बाढि ॥ १५९ ॥

भिन्नता

भीत गिरी पाखान में, अग्रानी उहि<sup>१</sup> ठाम ।  
अव 'रहीम' धोखो यहै<sup>२</sup>, को लागै केहि काम<sup>३</sup> ॥ १६० ॥

माँगना बुरा है

'रहिमन' वे नर मरि चुके, जे कहूँ माँगन जाहिं ।  
उनसे पहिले वे मरे, जिन मुख निकमत नाहिं ॥ १६१ ॥

॥० १५८—निम्न श्लोक का भाव भी यही है —

येपा न विद्या न तपो न दान, ज्ञान न शील न गुणो न धर्म ।  
ते मृत्युलोके भुवि भार भूता, मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

—भर्तृहरि शतक

१५९—मुलसीदामजी के इस दोहे का भी यही भाव है —

होहि बड़े लघु समय सहि, ता लघु सकहिं न कादि ।  
चन्द दूबरो कूबरो, तऊ नखत ते बादि ॥

१६०—१ कहूँ काय, २ भयो, ३ ठाय [ २० ]

१६१—करीर के निम्न दोहे का भी यही भाव है —

माँगन गये सो मरि रहे, मरे सो माँगन जाहिं ।  
तिन से पहिले वे मरे, होत करत जो नाहिं ॥

'रहिमन' याचकता गहे, बड़े छोट हुइ जात ।  
 नारायनह के भयो, वावन आँगुर गात ॥ १६२ ॥  
 माँगे घटत 'रहीम' पद, फितो करै चढ़ काम ।  
 तीन पैग बसुधा करी, तऊ वावनै नाम ॥ १६३ ॥  
 ✓ 'रहिमन' माँगत बड़ेन कै, लघुता होति अनूप । ॥ १६४ ॥  
 बलि मख माँगन हरि' गये, धरि वावन कर रूप ॥ १६४ ॥

### सच्चे मित्र की पहिचान ।

मथत मथत माखन रहै, दही मही विलगाइ । ॥ १६५ ॥  
 'रहिमन' सोई मीत है, भीर परे ठहराइ ॥ १६५ ॥  
 कह 'रहीम' संपति-सगे, वनत बहुत बहु-रीत ।  
 विपति कसौटी जे' कसे, सोई साँचे मीत ॥ १६६ ॥  
 जाल परे जलजात बहि, तजि मीनन कर मोह ।  
 'रहिमन' मछरी नीर कर, तऊँ न छाँड़ति छोह ॥ १६६ ॥

पाठा० १६२—वृन्द के दोहे का भी यही भाव है —

सब ते लघु है माँगियो, या में फेर न सार ।  
 बलि पे जाचत ही भये, वावन तन करतार ॥

१६४—१ को [ रहि० ]

१६४—दीनदयाल गिरि ने इस भाव पर यों कहा है —  
 माँगत ही में बड़ेन को, लघुता होति अनूप ।  
 बलि-मख जाँचत ही धरै, श्रीपति हू, लघु रूप ॥

पाठ्य० १६६—१ जो कर्म, कहिये सोई मीत [ २० दो० ]

१६७—१ तऊँ 'रहीम' लु मीन जड़, जल को छोड़ै छोह ।

[ २० दो ]

धनि 'रहीम' गति मीनक , जल विद्युत्त जिय जाय ।

जियत कज-तजि अत वसि , कहा भार कर भाय ॥ १६८ ॥

प्रेमी से कुछ छिपा नहीं रहता

जेहि 'रहीम' तन मन लियो , कियो हिये विच भोन ।

तामों सुख दुख कहन की , रही पात अब कोन ॥ १६९ ॥

सङ्गति

कदली सीप भुजङ्ग मुख , स्वाति एक गुन तीन ।

जैसी सगति वेठिये , तैसोई फल दीन ॥ १७० ॥

'रहिमन' जो तुम कहत है , सगति ही गुन होइ ।

बीच उखारी रमसरा , रस काहे ना होइ ॥ १७१ ॥

'रहिमन' नीचन सग वसि , लगत कलङ्क न काहि ।

दूध' कलारी कर गहे , मदहि कहँ सव ताहि ॥ १७२ ॥

पाठ० १७०—निम्न पद्यो का भी यही भाव है —

सीप गयो मुक्ता भयो , कदली भयो कपूर ।

अहिफन गयो तो विष भयो , सगति को फर 'सूर' ॥ 'सूरदास'

तरो कल घोळ कल भापिन के स्वाति गुन्द

जहाँ जाय पन्यो तहाँ तैसोई समूर है ।

ब्याल मुख विष ज्या , पिपूष ज्या पपीहा मुख ,

सीपी मुख मोती , कदली मुख कपूर है ॥ 'देव'

१७१—१ ते [ २०, २० दो० ]

१७२—१ दूधकलारिन हाथ एगि , मद समुझहि सन ताहि ।

[ रहि०, २० ]

१७२—वृन्द ने इस भाव को या कहा है —

चिहि प्रमग दूखन लागे , तजिय ताको साथ ।

सदिरा मानत है जगत , दूध कलाली हाथ ॥

'रहिमन' ओछे सग ते, साधु वचते । नाहिं ।  
 नैना' सैना करत हैं, उरज उमेठे जाहिं ॥ १७३ ॥  
 'रहिमन' नीच प्रसंग ते, नित प्रति लामबेकार ।  
 नीर चुरावन सम्पुटी, मार महत घरियार ॥ १७४ ॥  
 वसि कुसग चाहत कुसल, यह 'रहीम' अपसोस ।  
 महिमा घटी समुद्र के, रावन वसा परास ॥ १७५ ॥  
 'रहिमन' उजली प्रकृति कहें, नाहिं नीच कर' सग ।  
 करिया वासन कर गहे, करिया' लागत अङ्ग ॥ १७६ ॥

पाठा० १७३—१ कुटिलन सग रहीम कहि [ रहि०, २० ]

२ ज्यों नैना सैना करे [ रहि०, २० ]

१७३—तुलसीदास जी के दोहे का भी यही भाव है—  
 'तुलसी' ओछे सग ते, साधु वचते नाहि ।  
 ठकठैना नैना करे, उरज उमेठे जाहि ॥

१७४—गिम्न दोहो का भी यही भाव है—  
 ओछे नर के सग ते, निसदिन होत बिकार ।  
 नीर चुरावै सम्पुटी, मार खात घरियार ॥ 'तुलसी'  
 साधुन हू को होय दुख, सग गहे अति खोड ।  
 घटी पात जल को हरे, परै घटी पर चोट ॥

दीनदयाल गि

पाठा० १७५—१ जिय सोस [ रहि०, २० दो० ]

१७५—वृन्द ने इस भाव पर इस प्रकार कहा है—  
 दुर्जन के ससर्ग ते, सजन लहत फलेस ।  
 ज्यों दसमुख अपराध तें, बन्धन लख्यो जलेस ॥

पाठा० १७६—१ का [ २० ] को [ रहि० ], ० कालिख [ रहि० ]

जो 'रहीम' उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग ।  
 चन्दन विष व्यापत नहीं, लपिटे रहत भुजङ्ग ॥ १७७ ॥  
 मुकुता कर करपूर कर, चातक जीवन' जोय ।  
 एतो बडो 'रहीम' जल, व्याल'-उदन विष होय ॥ १७८ ॥  
 ओछे कर सतसग, 'रहिमन' तजहु अँगार ज्यों ।  
 तातो जोरै अङ्ग, सीरे पै कारो करै ॥ १७९ ॥  
 कह 'रहीम' कैसे निभे, 'रेर वेर कर सग ।  
 वे डोलत रस आपुने, उनके फाटत अङ्ग ॥ १८० ॥  
 पूरुष पूजइ देवरा, तिय पूजइ रघुनाथ ।  
 कह 'रहीम' कैसे बने, 'पटो बेल कर साथ ॥ १८१ ॥  
 'रहिमन' जिह्वा चावगी, कहि गइ सगग पताल ।  
 आपु तो कहि भीतर भई, जूती खात कपाल ॥ १८२ ॥

पाठा० १७७—१ 'रहिमन' उत्तम प्रकृति को [ २० दो० ]

१७७—चन्द्र ने इस भाव को यों कहा है —

मुजत कुसगति सग तैं, मज्जनता न तजन्त ।

ज्यो भुजङ्ग गन सग तउ, चन्दा विष न धरन्त ॥

१७८—१ तृप हर सोय ० [ २० दो० ], ० कुयल परे  
 [ २० दो० ]

१७९—अहमद के दोहों म भी यह सोरठा पाया जाता है —

ओछे को सग साथ, 'अहमद तजे अँगार ज्यों ।

तातो जोरै हाथ, सीरे पै कालो करै ।

पाठा० १८०—१ वे तो डोलत सहज ही [ २० दो० ]

१८१—१ कह 'रहीम' दोउन बने [ रहि० ]

२ भैस [ २०, २० दो० ]

### विपत्ति

'रहिमान' विपदा हू भली, जो थोरे दिन होइ ।

हित अनहित या जगन में, जानि परत सब कोइ ॥ १८३ ॥

अब 'रहीम' चुप करि रहउ, समुझि दिनन कर फेर ।

जब दिन नीके आइ हैं, वनत न लगिहै देर ॥ १८४ ॥

दुरदिन परे 'रहीम' कह, दुरथल जैयत भागि ।

ठाढे हजत घुर पर, जब घर लागत आगि ॥ १८५ ॥

समय परे ओछे वचन, सब के सहउ 'रहीम' ।

सभा दुसासन पट गहे, गदा गहे गहि भीम ॥ १८६ ॥

दुरदिन परे 'रहीम' कहि, भूलत सब पहिचानि ।

सोच नहीं वित हानि कर, जो न होय हित हानि ॥ १८७ ॥

जो 'रहीम' दीपक दसा तिय राखति पट ओट ।

समय परे ते होत है, वाही पट की चोट ॥ १८८ ॥

दुरदिन परे 'रहीम' कह, बडेन किये घटि काज ।

पाँच रूप पांडव भये, रथ-वाहक नलयज ॥ १८९ ॥

असमय परे 'रहीम' कह, माँग जात तजि लाज ।

ज्यों लछमन माँगन गये, पारासर के नाज ॥ १९० ॥

पाठा० १८४—१ 'रहिमान' चुप हे बेठिये, देखि

[ रहि०, २० ]

१८६—१ सहे [ रहि० ], २ लिये गहे [ रहि० ]

१८८—इसका पाठ इस प्रकार भी पाया जाता है—

जेहि अचल दीपक दुरयो, हत्यो सो ताही गात ।

'रहिमान' असमय के परे, मिव शत्रु हूँ जात ॥ [ २० ]

विपति भये 'जन ना रहे, होय' जो लाख करोर ।  
 नभ तारे छिपि जात हैं, जिमि 'रहीम' भै भोर ॥ १९१ ॥  
 'रहिमन' असमय के परे, हिन अनहित हुइ जाइ ।  
 बधिक बधै मृग वान सों, रुधिरे देत बताइ ॥ १९२ ॥  
 चित्रकूट' में रमि रहे, 'रहिमन' अवधनरेस ।  
 जापर विपदा परति है, सो आगत यहि देस ॥ १९३ ॥  
 'कोड 'रहीम' जनि काहुके, द्वार गये पछिताइ ।  
 सपति के सत्र जात हैं, विपति सवै लै जाइ ॥ १९४ ॥

सतोप

'जैसी परै सो सहि रहै, कह 'रहीम' यह देह ।  
 धरती ही पर परत है, सीत घाम ओ मेह ॥ १९५ ॥  
 काह कामरी पामरी, जाड गये से काज ।  
 'रहिमन' भूख बुताइये, केसड मिलै जु नाज ॥ १९६ ॥

निरभिमान

{ दिनहार कोड ओर है, भेजत सो दिन रेन ।  
 लोग भरम हम पै धरें, या ते नीचे नेन ॥ १९७ ॥

पाठा० १९१—१ रहे [ रहि० ]

१९३—१ आये राम 'रहीम' कह, किये मुनिन को भेस ।

जत्र जाको विपत्त परै, सो कटती तुव देस ॥ [ २० ]

१९४—१ को रहीम पर द्वार पर जात न जिय पटतात [ २० ]

२ जात [ २० ]

१९५—१ धरती कैसी रीति है, सीत धूप घन मेह ।

जैसी परै सु सहि रहै, त्यों 'रहीम' यह देह ॥

[ २० श्लो० ]



## स्वार्थी जगत

जब लग वित्त न आपने, तब लग मित्र न कोइ ।  
 'रहिमन' अम्बुज अम्बु त्रिनु, रवि' ताकर रिपु होइ ॥ १९८ ॥  
 स्वार्थ रुचत 'रहीम' कहै, आंगुन ह जग माहिं ।  
 बड़े बड़े बैठे लखहु, पथ रथ कृवर छाहिं ॥ १९९ ॥

## बड़ो की महिमा

जे' गरीब पर हित करे, ते 'रहीम' बड़ लोग ।  
 कहा सुदामा वापुरो, कृष्ण मितरि जोग ॥ २०० ॥  
 जो' बड़ेन कहँ लघु कहँ, नहिं 'रहीम' घटि जाहिं ।  
 गिरधर, मुरली धरु कहे, कल्लु' दुख मानत नाहिं ॥ २०१ ॥  
 'रहिमन' कयहुँ बड़ेन के, नाहिं गरव कर लेस ।  
 भार धरे ससार कर, तऊ कहावत सेस ॥ २०२ ॥  
 बड़े बड़ाई ना करे, बड़े' न बोले बोल ।  
 'रहिमन' हीरा कर कहै, लाख टका है मोल ॥ २०३ ॥

श्लोक १९८—१ रवि नाहिन हित होइ [ रहि० ]

तुलसीदासजी ने इस भाव पर यों कहा है—

आपन छोड़ो साथ जत्र, ता दिन हितु न कोय ।

'तुलसी' अम्बुज अम्बु त्रिनु, तरनि तासु-रिपु होय ॥

१९९—१ रुचत [ रहि० ] २ सत्र [ रहि०, २० ]

२००—१ जो गरीब को आदरै, सो [ २० दो० ]

२०१—१ बड़ेन सो कोऊ घटि कहे, नहि वे कटु घटि जाहिं ।

[ २० दो० ]

२ कल्लु 'रहीम' दुख नाहि [ २० दो० ]

२०३—१ बड़ो [ रहि० ]

- ✓ यों 'रहीम' सुख दुख सहत, बडे लोग रह' साति ।  
 उपत चन्द जेहि भाँति सों, अथवत ताही' भाँति ॥ २०४ ॥
- ✓ अगत' जाही फिरन मों, अथवत ताही काँति ।  
 त्यों 'रहीम' सुख दुख सहै', बैठे एकहि भाँति ॥ २०५ ॥
- । यों 'रहीम' गति गढ़ेन कै, ज्यों तुरग-व्यवहार ।  
 दाग टिचापत' आपु तन, सही होत असवार ॥ २०६ ॥
- बडे दीन के दुख सुने, लेत दया उर आनि ।  
 हरि हाथी सों कय हुती, कहु र्हाम पहिचानि ॥ २०७ ॥
- 'रहिमन' रिमसहित जत नहि, बडे प्रीति कर पाँरि ।  
 मूकन भारत आवई, नीद विचारी दौरि ॥ २०८ ॥
- बडे' बड़ाई ना तजे, लघु 'रहीम' इतराइ ।  
 राइ करोंदा होत है, कटहर होत न राइ ॥ २०९ ॥
- होय' न जाकर छाँह डिग, फल 'रहाम' अति दूर ।  
 गढेहु' सो पिन काज ही, जैसे ताग खजूर ॥ २१० ॥

पाठ० २०४—सह [ रहि०, २० ], = वाही [ २० ]

२०५—१ सयै, उदत एक ही भाँति । [ रहि० ]

२०९—१ जो 'रहीम' ओठी बड़ै, गली गली इतराइ ।

[ २० दो० ]

२१०—१ छाँह तो बाकी कन्नि ह , = बाढयो सो पिन काज को,

[ २० दो० ]

कजीर ने इस भाव पर यों कहा ह —

यदा हुआ तो क्या हुआ, जैमे पेड़ खजूर ।

पथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ॥

'रहिमन' छोटे नरन से, होत बड़े नहि काम ।  
 मढ़ो दमामा जात' है, कहूँ चूहे के चाम ॥ २११ ॥  
 अनुचित उचित 'रहीम' लघु<sup>१</sup>, करहि<sup>२</sup> बडेन के जोर ।  
 ज्यों ससि के संजोग<sup>३</sup> ते, पचप्रत आंचि चकोर ॥ २१२ ॥  
 होत कृपा जो बडेन के, सो कदाचि घटि जाइ ।  
 तो 'रहीम' मरिचो भलो, यह दूर सहयो न जाइ ॥ २१३ ॥

### सूक्तियाँ

'रहिमन' सीधी<sup>१</sup> चाल सों, प्यादा होत बजीर ।  
 फरजी साह न हुइ<sup>२</sup> सके, गति टेढी तासीर ॥ २१४ ॥  
 'रहिमन' विगरी आदि के, बने न खरचे दाम ।  
 हरि बाढे आकास लो, तऊ बावनै नाम ॥ २१५ ॥  
 छिमा बडेन कहँ चाहिये, छोटेन कहँ उत्पात ।  
 का 'रहीम' हरिकर घटेउ, जो भृगु मारी लात ॥ २१६ ॥

पाठा० २११—१ ना बने, २ सो [ रहि० ]

तुलसीदासजी का निम्न दोहा भी इसी भाव का है —  
 'तुलसी' ओछे नरन ते, होत बड़े नहि काम ।  
 मढ़त नगारा नहि उनै, सो चूहे के चाम ॥  
 २१०—१ कहि, २ फरत, ३ रस भोगतें [ र० दो० ]  
 दीनदयाल गिरि ने इस भाव पर यों कहा है —  
 अहि के बल बलजीर को, निबल बली संसार ।  
 ज्यों चकोर प्रल चन्द्र के, चाबत निचें अंगार ॥

२१०—१ सीधे, २ हो सके [ रहि० ]

[ २१६ ] वृन्द का यह दोहा भी इसी भाव का है —  
 नीति अनीति बड़े सहै, रिसभरि देत न गारि ।  
 भृगु उर दीनी लात की, कीनी हरि मनुहारि ॥

'छोटेन सों सोहैं वड़े, कह 'रहीम' यहरेरा' ।  
 सहसन के हय वॉधियत, ल दमरी' क मेख ॥ २१७  
 'रहिमन' देखि वटेन कहैं, लधु न दीजिये डारि ।  
 जहाँ काम आव सुई, कहा करै नरवारि ॥ २१८ ॥  
 गुरुता फरइ 'रहीम' कह, फरि आई है जाहि ।  
 उरपर कुच नीके लगैं, अनत वतौरी आहि ॥ २१९ ॥  
 'रहिमन' यहि ससार में, सत्र दुख मिलत अगोट ।  
 जैसे फूटे नरद के, परत दुहुँन सिर चोट ॥ २२० ॥  
 विगरी बात वनै नहीं, लार करै किन कोइ ।  
 'रहिमन' विगरे' दूध कहैं, मथे न माखन होइ ॥ २२१ ॥  
 'रहिमन' निज मन के प्रिया, मन ही राखहु गोइ ।  
 सुनि अटिलहैं लोग सब, वांछि न लहैं कोइ ॥ २२२ ॥  
 'रहिमन' खोटी आदि के, सो परिनाम लखाइ ।  
 जैसे दीपक तम भखै, कज्जल वमन कराइ ॥ २२३ ॥

पाठा० २१७—१ वड़े सु छोटेन मो वैधो, ० लेख, ३ काड़ी  
 [ १० दो० ]

वृन्द ने इस भाव पर निम्न प्रकार कहा है —

छोटे नर ते रहत हैं, सोभायुत सरताज ।  
 तिरमल राखै चाँदनी, जेमे पायन्दान ॥

२२०—१ जत्र लगि जीवन जगत में, मुख दुख मिलत अगोट ।

'रहिमन' फूटे गोट ज्ये, परत दुहुँन सिर चोट ॥

[ रहि० ]

२ मुख [ १०, १० दो० ]

२२१—१ फाटे [ रहि० ]

अरज गरज माने नहीं, 'रहिमन' ये जन चारि ।  
 रिनियाँ राजा माँगता, काम आतुरी नारि ॥ २२४ ॥  
 'रहिमन' जहँ रहियो चहै, कहै वाहि जो<sup>१</sup> भाव ।  
 जो वासर कहँ निसि कहै, तां फचपची दिखाव ॥ २२५ ॥  
 यह 'रहीम' माने नहीं, दिल से नयो<sup>१</sup> जो होइ ।  
 चीता<sup>२</sup> चोर कमान के, नये ते आंगुन होइ ॥ २२६ ॥  
 जो 'रहीम' ओछो<sup>१</sup> बढै, तां<sup>२</sup> अति ही इतराइ ।  
 प्यादे<sup>३</sup> सों फरजी भयो, टेढो<sup>१</sup> टंढो जाइ ॥ २२७ ॥  
 'रहिमन' घरिया रहैट के, त्यों ओछे के डीठि ।  
 रीतिहिँ सम्मुख होति है, भरी दिखावे पीठि ॥ २२८ ॥  
 'रहिमन' रिस कहँ छाड़ि के, करहु गरीबी भेस ।  
 मीठे बोलहु नै चलहु, सबै तुम्हारो देस ॥ २२९ ॥  
 जो 'रहीम' पगतर परै<sup>१</sup>, रगरि नाक औ सीम ।  
 निठुरा आगे रोइयो, आँसु डारियो<sup>२</sup> खीस ॥ २३० ॥  
 साधु सरहै साधुता, जती जोखिता जान ॥  
 'रहिमन' साँचे खूर कर, बैरी करै बखान ॥ २३१ ॥  
 ये 'रहीम' फीके दुऔ, महाजानि सतापु ।  
 ज्यों तिय आपन कुच गहे, आप बड़ाई आपु ॥ २३२ ॥

पाठ० २२५—१ के दाव [ रहि०, १० दो ]

२२६—१ नया [ रहि० १० ], २ चिता जोर कमान के [१०]

एक अन्य कवि ने इसी भाव को यों कहा है —

नवन नवन बहु अंतरा, नवन नवन बहु वान ।

ये तीनों बहुते नवें, चीता चोर कमान ॥

२२७—१ छोटी, २ बढत करत उत्पात, ३ तिरछो तिरछो जात

२३०—१ परयो [ १० दो० ], परो [ रहि० ] २ गारियो [ रहि०, ]

अमृत ऐसे घबहन में, 'रहिमन'ग्नि<sup>१</sup> कं गाँम ।  
 जैसे मिसिगिहु में मिली, निरस्त<sup>२</sup> राँस कफाँम ॥ २३३ ॥  
 रीति प्रीति सप सों भली, पर न हित मित गोत ।  
 'रहिमन' याही जनम के, बहुरि न सगति होत ॥ २३४ ॥  
 'रहिमन' वित्त अधर्मकर, जात<sup>१</sup> न लागे वार ।  
 चोरी करि होरी रची, भई छिनक में छाग ॥ २३५ ॥  
 जो घर ही में घुसि रहे, कदली सुवन सुडील ।  
 तां 'रहीम' तिन ते भले, पथ के अपत करील ॥ २३६ ॥  
 कामहीन 'रहिमन' लग्यहु, धँसो घड़े घर चोर ।  
 चिन्तत ही उड़-लाभ क, जागत हुइ गा भोर ॥ २३७ ॥  
 'रहिमन' जगजीवन घड़े, काह<sup>१</sup> न देखे नेन ।  
 जाइ वसानन अछत ही, रूपि लागे गढ<sup>२</sup> लैन ॥ २३८ ॥  
 जानि<sup>१</sup> अनीतो जे करे, जागत ही रह सोइ ।  
 ताहि सिखाइ जगाइयो, 'रहिमन' उचित न होइ ॥ २३९ ॥

ठा० २३३—१ विप, ० मनिक [ १० दो० ]

२३५—१ जरत [ रहि०, १० गे० ]

२३८—१ काहु, ० गय [ रहि०, १० गे० ]

२३९—१ अनकीन्हीं घातें करै, सोवत जागै जोय ।

[ रहि०, १० गे० ]

निम्न दोहो का भाव भी यही है —

समुझि सुनीति कुनीति रत, जागत ही रह सोय ।

उपदेमिरो जगाइरो, 'तुल्मी' उचित न होय ॥

'तुल्सी'

जानि बूझ अजुगत करै, तासों कहा बसाय ।

जागत ही सोवत रहै, तेहिको सके जगाय ॥

'वृन्द'

उरग तुरंग नारी नृपति, नीच जति हथियार ।  
 'रहिमन' इन्हें सँभारिये, पलटत लगे नवार ॥ २४०  
 'रहिमन' ओछे<sup>१</sup> नरन<sup>२</sup> ते<sup>३</sup>, तजहु वैर औ प्रीति ।  
 काटे चाटे स्यान<sup>४</sup> के, दुहँ भौंति विपरीति ॥ २४१  
 माह मास कर भिनुसारा, मीन सुखी नहि सार ।  
 ज्यो 'रहीम' जगना जियइ, विजुरे आपन ठोर ॥ २४२  
 माह मास लहि<sup>१</sup> टेसुआ, मीन परे थल और<sup>२</sup> ।  
 त्यों 'रहीम' जग जानिये, छूटे आपन ठोर ॥ २४३  
 करत निपुनई गुन विना, 'रहेमन' निगुन<sup>१</sup> हुजूर ।  
 मानहुँ टेस्त विटप चढि, यहि प्रकार हम कूर ॥ २४४  
 गरज आपनी आप<sup>१</sup> सों, 'रहिमन' कहीन जाइ ।  
 जेसे कुल के कुल बधू, पर घर जात लजाइ ॥ २४५  
 ससिसकोच<sup>१</sup> साहससलिल, मान<sup>२</sup> सनेह 'रहीम' ।  
 बढत बढत बढ़ि जात हैं, घटत घटत घटिमीम ॥ २४६

[ २४० ] तुलसीदास जी के निम्न दोहे का भी यही भाव है —

उरग तुरंग नारी नृपति, नर नीचो हथियार ।

'तुलसी' परखत रहय नित, नइहि न पलटत वार ॥

पाठा० २४१—१ सोंटे जनन [ २० दो० ]

२ सों, वैर भयो ना प्रीति [ रहि० ]

२४३—१ लहि टेसुआ [ २० दो० ], २ भार [ २० ]

२४४—१ गुनी [ २०, २० दो० ], निपुन [ रहि० ]

२४५—१ काहु [ २० दो० ]

२४६—१ सुकेस [ रहि० ], २ साजि [ २० दो० ]

- 'रहिमन' यह तन सूप है, लीजे जगत पछोर ।  
 हलुकन कहँ उडि जान दे, गरुयं राखि बटोर ॥ २४७ ॥  
 दूटे सुजन मनाइये, जो दूटे सो धार ।  
 'रहिमन' फिरि फिरि पोहिये, दूटे मुकुताहार ॥ २४८ ॥  
 अधम वचन ते' को फल्यो, येडि तार के छँहि ।  
 'रहिमन' काम न आवहों, ये नीरस जग माहि ॥ २४९ ॥  
 हित अनहित 'रहिमन' करै, जाके जहाँ विसात ।  
 ना यह रहै न वह रहै, रहै कहन कहँ घात ॥ २५० ॥  
 अनुचित वचन न मानिये, जदपि गुणइसि गाढि ।  
 है 'रहीम' रघुनाथ ते, सुजस भरत करवाढि ॥ २५१ ॥  
 सबै कहावै लसकरी, जो लसकर कहँ जाँइ ।  
 'रहिमन' सेल्लु जोई सहँ, सोइ जगीरे खाँइ ॥ २५२ ॥  
 पात पात कर सींचियो, वरी वरी कर लौन ।  
 'रहिमन' ऐसी बुद्धि ते', काज सरैगो कौन ॥ २५३ ॥

पाठा० २४७—१ या [ रहि० ], २ जातु हैं [ र० दो० ]

२४९—१ के [ रहि० ], २ आय ह [ रहि० ]

२५०—१ हित 'रहीम' इतऊ करे [ र०, रहि० ],  
 इतऊ की जगह कितऊ [ र० दो० ]

२ ना की जगह 'नहि' [ रहि० ] ओर 'न' [ र० ]  
 ओर 'नँहर रहै न घर रहै [ र० दो० ]

२५२—१ धीर कोउ कहि जाय [ र० दो० ]

२ मेल सदाके जो सह [ र० ]

२५३—१ को, कहौ धरैगो कान [ रहि० ]



एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाइ ।  
 'रहिमन' सींचै मूल काँ, फूलइ फलइ अघाइ ॥ २५४ ॥  
 खैर खून खॉसी खुशी, वैर प्रीति मद-पान ।  
 'रहिमन' दावे ना दवै, जानत सकल जहान ॥ २५५ ॥  
 'रहिमन' अववे विरल कएँ, जिनकै छॉह गंभीर ।  
 यागन विच विच देखियत, सेहुँइ कुज करीर ॥ २५६ ॥  
 'रहिमन' आटा के लगे, वाजत है दिनगत ।  
 घिउ सकर जे खात हैं, तिनके कहा बिसात ॥ २५७ ॥  
 यह 'रहीम' निज सग लै, जनमत जगत न कोइ ।  
 वैर प्रीति अभ्यास जस, होत होत ही होइ ॥ २५८ ॥  
 गुन ते लेत 'रहीम' जन, सलिल कूप तें काढि ।  
 कूपहुँ ते कहूँ होत है, मन काह कर याढि ॥ २५९ ॥

पाठा० २५४—१ मूलहिँ सौंचिबो [ रहि० ]

करीर के दोहों में भी यह दोहा पाया जाता है  
 केवल उसमें 'रहिमन' की जगह 'जो तू' है ।

[ २५५ ] निम्न दोहो का भाव भी यही है —

धन गुन जोवन रूप मद, दुरै न एका संच ।  
 ज्यो हाँसी खॉसी बहुरि, रोके रहत न रच ॥ —  
 इश्क मुश्क खॉसी खूनस, खैर खून मद-पान ।  
 चतुर छिपावत हैं सही, आप परत हैं जान ॥ 'कोई क

२५६—१ कुज [ २० दो० ], कज [ २०, रहि० ]

२५८—१ सय [ २० दो० ]

२५९—१ कहि [ २० दो० ]

२ काहू को मन होयगो, कहा कूप ते याढि । [ २० दो० ]

'रहिमन' तीन प्रकार ते, हितअनाहेत पहिचान।  
 परवस परे परोस वसि, परे मामिला जानि ॥ २६० ॥  
 'रहिमन' यहि संसार में, सत्र सों मिलिये धाइ।  
 ना जानै केहि रूप में, नारायन मिल जाइ ॥ २६१ ॥

### विवाह-निषेध

'रहिमन' व्याह वियाधि है, सकहु तो जाहु बचाइ।  
 पाइन बेरी परत है, ढोल बजाइ बजाइ ॥ २६२ ॥

### अनुभव

अब 'रहीम' मुसाकेल परी, गाढ़े दोऊ काम।  
 साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिले न राम ॥ २६३ ॥  
 थोथे चादर काँर के, ज्यों रहीम घहरात।  
 धनी पुरुष निर्धन भये, करे पाछिली घात ॥ २६४ ॥

### परिशिष्ट

#### 'दोहे की प्रशंसा

दीरघ दोहा अर्थ के, आखर थोरे आहिं ।  
 ज्यों 'रहीम' नर कुडली, सिमिटि कूदि कडि जाहिं ॥ २६५ ॥

[२६२] निम्न दोहे का भी यही भाव है —

उले फूले वे फिर, जिन को भायो व्याउ ।

'तुलसी' गाय बजाय के, देत काठ में पाउ ॥

'तुलसी'

रूप कथानक<sup>१</sup> चारु<sup>२</sup> पद<sup>३</sup>, किंचन<sup>४</sup> दोहा लाल ।  
ज्यों ज्यों निरखत अलुप<sup>५</sup> त्यों, मोल 'रहीम' विसाल ॥ २६६ ॥

तान

विधना यह जिय जानि कै, सेसहि दिये न कान ।  
धरा मेरु सव डोलिहैं, तानसेन कै तान ॥ २६७ ॥

डर

घर डर गुरु डर वंस डर, डर लज्जा डर मान ।  
डर जेहि के जिह में वसै, तिन पाया रहिमान ॥ २६८ ॥

पाठा० २६६—१ कथायक [ २० दो० ], कथा पद [ रहि० ]

२ चारि [ २०, २० दो० ]

३ पद [ रहि० ]

४ कचन [ २०, रहि०, २० दो० ]

५ सूक्ष्मगति [ रहि० ]

२६८—इस दोहे का पाठ इस प्रकार भी है —

'रहिमान' जा डर निसि परै, ता दिन डर सिर कोय ।

पल पल करके लागते, देखु कहा धौं होय ॥

[ रहि० ]

दूसरा पाठान्तर—

डर वारिस डर परम गुरु डर करनी में सार ।

खोजी दरै सो ऊयरै गाफिल पावै मार ॥



# वरवै नायिका-भेद

## दोहा

कविन कह्यो दोहा कह्यो, तुल्यो न छप्प छन्द ।  
विरन्धो यहै प्रचारि के, यह वरवे रस-छन्द' ॥ १ ॥  
वेधक अनियारे बड़े, यह वरवे के वान ।  
सुनत जाहि चित चाव पै, समुझै चतुर सुजान ॥ २ ॥

## भगलाचरण

बन्दौ त्रेपि सरदवा, पद कर जोरि ।  
परनत काव्य वरवजा, लगइ न खोरि ॥ १ ॥  
जिस सुदर स्त्री को देखते ही हृदय में शङ्कार-रस का उदय हो

'नायिका' कहते हैं। यथा —

लहरत लहर लहरिया, लहर बहार ।  
मोतिन जरी किनरिया, विधुरे वार ॥ २ ॥

स्वभाविक धर्मानुसार नायिकाओं के तीन भेद माने गये हैं — १

कीया, २ परकीया और ३ गणिका ।

## स्वकीया

लज्जाशील और पति से प्रेम करनेवाली नायिका को 'स्वकीया' कहते हैं। यथा —

१० दोहा न० १—१ रस-छन्द ( ह० )

ना ( १ ) दोहा न० ० और वरवा न० १ हस्तलिखित में अधिक हैं ।

( २ ) वरवा न० ० 'रहि०' आर 'र०' में मुग्धा के उदाहरण में आ गया है ।

रहति नयन के कोग्वा, चितवनि छाय ।  
 चलत न पगु पैजनियाँ, मगु अहटाय ॥ ३ ॥  
 स्वकीया के तीन भेद होते हैं — १ मुग्धा, २ मध्या और ३ प्राज्ञ ।

### मुग्धा

जिसके अङ्गन्यष्टि में योवनागम के चिन्ह प्रकट होने लगे हा उस  
 'मुग्धा' कहते हैं । यथा —

लागेउ आनि नवेलियहिं, मनसिज वान ।

उकसन लाग उरोजवा, दग तिरछान ॥ ४ ॥

मुग्धा के दो भेद होते हैं — १ अज्ञात योवना ओर २ ज्ञात योवना ।

### अज्ञात-योवना

जिमे योवनागम का ज्ञान न हो उसे 'अज्ञातयोवना' कहते हैं ।  
 यथा —

कउन रोग धो<sup>१</sup> छतियाँ, उकसेउ<sup>२</sup> आइ ।

दुखि दुखि उठइ करेजवा, लागि जनु जाइ<sup>३</sup> ॥ ५ ॥

### ज्ञात योवना

जिमे यावनागम का ज्ञान हो गया हो उसे 'ज्ञात योवना' कहते हैं ।  
 यथा —

औचक आइ जोवनवा, मोहिं दुख दीन्ह ।

छुटिगा सग गोइयवाँ, नहिं भल कीन्ह ॥ ६ ॥

वरवा म० ३ 'रहि०' आर 'र०' में मध्या के उदाहरण में दिया गया है

पाठ० ५—१, दुहँ, २ उपजेउ [ रहि०, र० ]

३ लाय [ ह० ]

ज्ञात-यात्रना के अवस्था-भेद में दो रूप माने जाते हैं —

क—नवोदा और ख—विश्रब्ध नवोदा ।

### नवोदा ।

भय और लाज के कारण जो पति से दूर भागती हो उसे नवोदा हते हैं । यथा —

पहिरति चूनि चुनरिया, भूपन भाव ।

नेननि देति कजरवा, फूलनि चाप ॥ ७ ॥

### विश्रब्ध नवोदा

पति के प्रति जो कुछ कुछ अनुराग आर विश्वास दिग्माने लगी हो वे 'विश्रब्ध नवोदा' कहते हैं यथा —

जघन जोरति गोरिया, करति कठोर ।

छुअन न पावइ पियवा, फहुँ शुच कोर ॥ ८ ॥

### मध्या

जिस नायिका में एजा और काम समान माला में पाय जात हो वे 'मध्या' कहते हैं । यथा —

निसु दिन चाहति चाहन, श्री ब्रजराज ।

लाज जोरावरि हुइ वस, करति अकाज ॥ ९ ॥

### प्रौढा

पति से अनुराग करने वाली नायिका को 'प्रौढा' कहते हैं । यथा —

मोरहि बोलि कोइलिया, बढवति ताप ।

'घरी' एक घरि ॥ अलिया, रहु चुपचाप ॥ १० ॥

### परकीया

पर पुरुष से प्रेम रखने वाली नायिका को 'परकीया' कहते हैं यथा —

सुनि<sup>१</sup> धुनि कान्ह मुरलिया, रागन भेद ।

गइल न छाँड़ति गोरिया, गनति न खेद ॥ ११ ॥

परकीया के दो भेद हैं — १—ऊदा और २—अनूदा ।

#### ऊदा

नायिका व्याही किसी से हो ओर प्रीति किसी दूसरे से रखती हो उसे 'ऊदा' कहते हैं । यथा —

निसु दिन सासु ननदिया, मुहिं घर घेर<sup>१</sup> ।

सुनन<sup>२</sup> न देत मुरलिया, ना धुनि<sup>३</sup> टेर ॥ १२ ॥

#### अनूदा

जो किसी पुरुष से प्रेम करती हो पर अविवाहिता हो उसे 'अनूदा' कहते हैं । यथा —

मोहिं वर जोग कन्हैया, लागउ पाय ।

तुहुँ कुल पूज देवतवा, होहु सहाय ॥ १३ ॥

परकीया के और भी छ भेद होते हैं — (१) गुसा, (२) विदग्धा, (३) लक्षिता, (४) कुलग, (५) मुदिता और (६) अनुशयना ।

#### गुसा

अन्य पुरुष की प्रीति को छिपानेवाली स्त्री 'गुसा' कहलाती है । इसके तीन भेद होते हैं — ( १ ) भूत सुरति संशोपना, ( २ ) वर्तमान सुरति संशोपना और ( ३ ) भविष्य-सुरति संशोपना ।

पाठा ० ११—१ सुनि सुनि कान मुरलिया [ रहि०, १० ]

१२—१ हेर, २ सुनइ, ३ मधुरी [ रहि०, १० ]

यस्या न० १०, '१०' म परकीया के उदाहरण में दिया गया है ।

### भूत-सुरति-संगोपना

कीती हुई रति को छिपानेवाली नायिका 'भूत-सुरति-संगोपना' कहलाती है। यथा —

चूनन फूल गुलबधा, डार कटील ।  
 टुटिगा बंद अंगियवा, फट पट नील ॥ १४ ॥  
 अब नहि तोहि बड़ावडें, सुगना मार ।  
 पगिगा दाग अधरवा, चोंच चुटार ॥ १५ ॥

### वर्तमान-सुरति-संगोपना

वर्तमान समय की रति को छिपानेवाली नायिका 'वर्तमान-सुरति-संगोपना' कहलाती है। यथा —

मुहि तुहि हरबर आवत, भा पथ-खेद ।  
 रहि रहि लेत उससजा, बहत प्रसेद ॥ १६ ॥

### भविष्य-सुरति-संगोपना

भावी रति की छिपानेवाली नायिका को 'भविष्य-सुरति-संगोपना' कहते हैं। यथा —

जइहों चुनन कुसुमिआँ, खेत बडि दूर ।  
 बेरिया<sup>१</sup> केरि छोहरिया<sup>२</sup>, मो<sup>३</sup> सग कूर ॥ १७ ॥

पाठ० १५—आयेमि कवनेउ औरग [ रहि०, २० ]

वरवा स० १६ '२०' म अन्य-सम्भोग दु रिता के उदाहरण में  
 दिया गया है।

पाठ० १७—१' नाभा [ रहि०, २० ], २—छोकरिया [ २० ]

३—मुहि, मोहि [ रहि०, २० ]



### विदग्धा

विदग्धा नायिका के दो भेद होते हैं — ( १ ) वचन विदग्धा आर  
( २ ) क्रिया-विदग्धा ।

#### वचन-विदग्धा

अन्य पुरुष के प्रति वाक्य चातुरी द्वारा प्रेम प्रकट करनेवाली  
नायिका को 'वचन विदग्धा' कहते हैं । यथा —

होइ आइ कारि वदरिया, वरखत पाथ ।  
जइवो घन अमरैया, सग न साथ ॥ १८ ॥

#### क्रिया-विदग्धा

अन्य पुरुष के प्रति क्रिया-चातुरी द्वारा प्रेम प्रकट करनेवाली नायिका  
को 'क्रिया-विदग्धा' कहते हैं । यथा —

तोरेसि नाक नथुनिया, मित हित नीक ।  
कहेसि नाक पहिरावहु, चित दै सीक ॥ १९ ॥  
याहेर लै के दियवा, चारन जाइ ।  
सासु ननद ढिग पहुँचत, देति घुताइ ॥ २० ॥

वरवा स० १८ 'रहि०' और '२०' में सुरति सगोपना के उदाहरण  
में दिया गया है । पाठ इस प्रकार है —

होइ कत आइ वदरिया, वरखहि पाथ ।  
जैहौ घन अमरैया, सुगना साथ ॥

वरवा स० १९ 'रहि०' आर '२०' में 'वचन विदग्धा' के उदाहरण  
में दिया गया है । पाठ इस प्रकार है —

तानिक सी नाक नथुनियो, मित हित नीक ।  
कहति नाक पहिरावहु, चित द सीक ॥

### लक्षिता

जिस नायिका का अन्य पुरुष सम्बन्धी प्रेम किन्नी चिह्न द्वारा प्रकट होता हो उसे 'लक्षिता' कहते हैं। यथा —

आज नयन के कोरवा, औरै<sup>१</sup> भाँति ।

नागर नेह नवेलियहि<sup>२</sup>, सुँदि<sup>३</sup> न जाति ॥ २१ ॥

### कुलटा

अनेक पुरपो से प्रेम रखनेवाली नायिका को 'कुलटा' कहते हैं। यथा —

जस मदमातल हथिया, हुमकत जाइ ।

चितवति छैल<sup>१</sup> तरनियाँ, सुँह मुसुकाइ ॥ २२ ॥

चितवति ऊँचि अट्रिया, दहिने याम ।

लासन लगत विदेसिया, हुइ वस काम ॥ २३ ॥

### मुदिता

जो नायिका अपने अनुकूल समय या कार्य को देखकर मुदितमना हो उसे 'मुदिता' कहते हैं। यथा —

जइहौ कान्ह<sup>१</sup> नेवतवा, भा दुख दून ।

वह<sup>२</sup> करै रखवरिया, है<sup>३</sup> घर सून ॥ २४ ॥

पाठ०—२१—१ कजरा, २—नवेलिया, ३—सुदिने [ रहि०, १० ]

२२—१ जाति [ रहि०, १० ]

धरवा सं० २३ 'रहि०' और '१०' में मुदिता के उदाहरण म दिया गया है। पाठ इस प्रकार है —

चितवति ऊँचि अट्रिया, दहिने याम ।

लासन लगत विदियवा, लखी सकाम ॥

२४—१ काए, २—गाँव, ३—सय [ रहि०, १० ]

नेचतहिँ गइल ननदिया , मैके सास ।  
दुलहिन तोरि खरिया , ओ' पिय पास ॥ २५ ॥

### अनुशयना

संकेत-स्थान नष्ट हो जाने के कारण दुःखिता नायिका को 'अनुशयना' कहते हैं । इसके तीन भेद हैं —

( १ ) प्रथम अनुशयना ( संकेत विवट्टना ), ( २ ) द्वितीय अनुशयना ( भावी संकेत नष्ट ) और ( ३ ) तृतीय अनुशयना ( रमण गमना ) ।

#### प्रथम अनुशयना

संकेत-स्थान के नष्ट हो जाने से दुःखी नायिका को 'प्रथम अनुशयना' कहते हैं । यथा —

जमुनातीर तरुनिअहिँ , लखि भा सूल ।  
झरिया कुञ्ज<sup>१</sup> वेइलिया , फुलत न फूल ॥ २६ ॥  
प्रीपम दहत<sup>१</sup> दघनिया , कुञ्ज कुटीर ।  
तिमि तिमि तकन तरुनिअहिँ , बाढति<sup>२</sup> पीर ॥ २७ ॥

पाठ० २५—१ आवै आसु [ रहि०, २० ]

स० २६ और २७ के बरवै 'रहि०' और '२०' में 'द्वितीय अनुशयना' के उदाहरण में दिये गये हैं ।

पाठ० २६—१ रूख ।

पाठ० २७—१ दहत, २—घाटी [ रहि०, २० ]

बरवा न० २८ और २९ 'रहि०' और '२०' में प्रथम 'अनुशयना' के उदाहरण में दिये गये हैं ।

## द्वितीय अनुशयना

भावी संकेत-स्थान की चिन्ता में त्रुटित होनवाली नायिका को 'द्वितीय अनुशयना' कहते हैं। यथा —

धीरज धरु किन गोरिया, करि अनुराग ।  
जात जहाँ पिय-देसवा, घन घन वाग ॥ २८ ॥  
जनि मरु रोय दुलहिया, करि मन ऊन ।  
सघन कुञ्ज ससुररिया, औ घर सुन ॥ २९ ॥

## तृतीय अनुशयना

जो नायिका संकेत-स्थान में समय पर पहुँचने से चूर जाने के कारण दुखी हो उसे 'तृतीय अनुशयना' कहते हैं। यथा —

मितवा करत यँसुरिया, सुमन सपात ।  
फिरि फिरि तकत तरुनिया, मन पछनात ॥ ३० ॥  
मित उतते फिरि आयेउ, देखि' अराम ।  
मैं न गई अमरइया, लहेउ न काम ॥ ३१ ॥

## गणिका

केवल धन के लिये अनुराग करनेवाली नायिका को 'गणिका' कहते हैं। यथा —

लखिलखि धनिक नयकजा, पनवति भेख ।  
रहि गइ हेरि अरसिया, कजरा रेख ॥ ३२ ॥

उपर्युक्त नायिकाओं के तीनों भेद ओर होते हैं —

( १ ) अन्य-सुरति-दु खिता, ( २ ) मानिनी, ओर ( ३ ) वनोक्ति गविता ।

भाग ३१—१ देखु न राम [ रहि० ] आर लहेउ न राम [ २० ]

### अन्य-सुरति-दु खिता

जो नायिका प्रीतम की प्रीति के दूसरे म चिन्ह देखकर दुखित होती है वह 'अन्य-सुरति-दु खिता' कहलाती है। यथा —

मैं पठई जेहि कजवा, आपसि साधि ।

छुटिगा सीस जुरवना, दिढ करि वाँधि ॥ ३३ ॥

### वक्रोक्ति-गर्विता

इसके दो भेद हैं — (१) प्रेम-गर्विता और (२) रूप-गर्विता।

### प्रेम-गर्विता

प्रियतम के प्रेम का गर्व करनेवाली नायिका को 'प्रेम-गर्विता' कहते हैं। यथा —

आपुहि देत जवकवा, गूधत हार ।

चुनि पहियाइ चुनरिया, प्रान अधार ॥ ३४ ॥

अउरन पाँय जवकवा, नाइन दीन्ह ।

मोहि पग आगर गोरिया, आनन कीन्ह ॥ ३५ ॥

### रूप-गर्विता

जिस नायिका को अपने रूप का गर्व हो उसे 'रूप-गर्विता' कहते हैं। यथा —

वरवा स० ३३ 'रहि०' में 'वर्तमान-सुरति सगोपना' के उदाहरण में दिया गया है। पाठ इस प्रकार है —

मैं पठयेठ जिहि कमवाँ, भायेसि साध ।

छुटिगा सीस को जुरवा, कसि के वाँधि ॥

'र०' में भी उपर्युक्त ही पाठ दिया गया है पर उदाहरण अन्य सुरति-दु खिता का ही माना गया है।

पाठ० ३४—१ कजरवा [ ह० ]

खीन मलिन चिख भइया , आगुन तीन ।

मोहि कहि चद-चदनिया , पिय मति हीन ॥ ३६ ॥

दातुल<sup>१</sup> भएसि मुगउआ , निरस परान ।

यह मधु भरल अधरवा , करसि समान<sup>२</sup> ॥ ३७ ॥

अवस्था-भेद के अनुसार स्वकीया, परकीया और गणित्रा के दम्-दस भेद होते हैं —

( १ ) प्रोषित-पतिका, ( २ ) खण्डिता, ( ३ ) कल्हान्तरिता,  
( ४ ) मिश्रलघा, ( ५ ) उत्कठिता, ( ६ ) वासकमना, ( ७ ) स्वाधीन-  
पतिका, ( ८ ) अभिसारिका, ( ९ ) प्रवस्यत्पतिका भाव ( १० ) आगत-  
पतिका ।

### प्रोषित-पतिका

जिम स्त्री का प्रियतम विदेश में हो और वह वियोग-दुःखिता हो उसे 'प्रोषित-पतिका' कहते हैं ।

### मुग्धा प्रोषित-पतिका

का सो कहउँ मँदेसवा , पिय परदेसु ।

लगेउ चत नहिँ फूलइ , तेहि वन रेसु ॥ ३८ ॥

### मध्या प्रोषित-पतिका

का तुम जुगल तिरियवा , झगरति आइ ।

पिय विनु मनहुँ अटरिया , मोहिँ न सुहाइ ॥ ३९ ॥

पात्र० ३६—१ मोहि कहत विधु यदनी [ रहि०, २० ]

३७—१ दातुल भेस मुगस्वा [ गहि०, २० ]

० गुमान [ रहि०, २० ]

### प्रौढा प्रोयित-पतिका

तैं अब जाइ वेइलिया , वरि जरि मूल ।  
विनु पिय सूल करेजया , लखि तुव फूल ॥ ४० ॥

### खंडिता

प्रियतम के शरीर पर अन्यत्र रमण के चिन्ह देख दुःखित होकर करनेवाली नायिका को 'खंडिता' कहते हैं ।

### मुग्धा-खंडिता

सखिसिखसीख<sup>१</sup> नवलिया , कान्हेसि मान ।  
पियलखि<sup>२</sup> कोप-भवनवाँ , ठानेसि ठान ॥ ४१ ॥  
सीस नवाइ नवलिया , निचवइ जोइ ।  
छिति खन छोरछिगुनिआँ , सुसुकति रोइ ॥ ४२ ॥

### मध्या खंडिता

गिर गइ पीय पगरिया , आलस पाइ ।  
पवढ़उ जाइ वरोठवा , सेज विछाइ<sup>१</sup> ॥ ४३ ॥  
पोछहु अधर कजरवा , जावक भाल ।  
<sup>१</sup>उपटेउ पीतम छतियाँ , विनु गुन माल ॥ ४४ ॥

### प्रौढा खंडिता

पिय आवत अँगनैया , उठि कै लीन ।  
विहँसत चतुरतिरियवा , बैठक दीन ॥ ४५ ॥  
पौढ़हु पीय पलंगिया , मीजउँ पाय ।  
रैन जगे कइ निदिया , सबमिटि जाय ॥ ४६ ॥

पाठा० ४१—१ मानि, २ विनु [ रहि०, २० ]

४३—१ डसाठ [ रहि०, २० ]

४४—१ उपजेउ [ रहि०, २० ]

### परकीया खडिता

जेहिलगि सजन सनेहिया, छुट पर वार ।  
अपने<sup>१</sup> होत पिअरवा, साँच परार ॥ ४७ ॥

### गणिका खडिता

मितवा ओठ कजरवा, जावक भाल ।  
लिहेसि काढि बइरिनियाँ, तकि मनिमाल ॥ ४८ ॥

### कलहान्तरिता

प्रियतम से कलह करके राट को अनुताप करनेवाली नायिका को 'कलहान्तरिता' कहते हैं ।

### मुग्धा कलहान्तरिता

आंयहु अग्रहि गवनवाँ, तुरतहि<sup>१</sup> मान ।  
अग्रसलागि<sup>२</sup> गोरिअवा, मन पछनान ॥ ४९ ॥

### सध्याकलहान्तरिता

मैं मतिमन्द तिरियवा, परलिउ<sup>१</sup> भोरि ।  
ते<sup>२</sup> नहिं कन्त मनावत, तेहिं कहु खोरि ॥ ५० ॥

गानो ४७—१ आपन हित परिवारवा, सोच परार [ रहि०, २० ]

४९—१ जुखने, २ लागिहि गोरियहि [ रहि०, २० ]

५०—१ परलेउ भोर [ रहि०, २० ]

२ तेहि नहि कन्त मनवलेउ, तोहि कहु खोर

[ रहि०, २० ]



## प्रौढा कलहान्तरिता

थकिगा<sup>१</sup> करि मनुहरिआ, फिरिगा पीर ।  
में उठि<sup>२</sup> तुरति न लायेउं, हिमकर हीव ॥ ५१ ॥

## परकीया कलहान्तरिता

जेहि लगि कीन्ह विरोधगा<sup>१</sup>, ननद जेठानि ।  
रखेउं न लाइ करेजवा, तेहि हित जानि ॥ ५२ ॥

## गणिका कलहान्तरिता

जेहि दीन्हेउ बहु बिरियाँ, मोहिँ मनिमाल ।  
तेहि ते रुठिउं सखिया, फिरि गये लाल ॥ ५३ ॥

## विप्रलब्धा

सकेत-स्थान में प्रियतम को न देखकर जो नायिका व्याकुल होती है उसे 'विप्रलब्धा' कहते हैं ।

## सुग्धा विप्रलब्धा

मिलेउ न कन्त सहेटवा, लखेउ डेराइ<sup>१</sup> ।  
धनियाँ कमल-वदनियाँ, गइ कुम्हिलाइ ॥ ५४ ॥

## मध्या विप्रलब्धा

दीख न केलि भवनवाँ, नन्दकुमार ।  
लै ले ऊँचि उससवा, हुइ बिकरार ॥ ५५ ॥

पाठ० ५१—१ गइ मन धन हरिया [ रहि०, २० ], २ रुठि [ २० ]  
धरवा न० ५१ ' २० ' में ' मध्या कलहान्तरिता के उदाहरण  
में दिया गया है ।

५२—१ विरोगगा [ ह० ]

५४—१ फिरि दुपराय [ रहि०, २० ]

प्रौढा विप्रलब्धा

देखि न कन्त सहेटवा, भा दुख पूर<sup>१</sup> ।  
रोचन नैन कजरवा, होइगा दूर ॥ ५६ ॥

परकीया विप्रलब्धा

वैरिनि मह<sup>१</sup> अभिसरवा, अति दुख दानि ।  
नापर<sup>२</sup> मिलेउ न मितवा, भइ पछतानि ॥ ५७ ॥

गणिका विप्रलब्धा

करिके सोरह सिंगरवा, अतर लगाइ ।  
मिलेउ न लाल सहेटवा, फिरि पछिताइ ॥ ५८ ॥

उत्कठिता

प्रियतम के आने में थिलम्व होता देखकर जो स्त्री चितित होती है उसे 'उत्कठिता' कहते हैं ।

मुग्धा उत्कठिता

गइ<sup>१</sup> जुगजाम जमिनिया, पिय नहिं आय ।  
राखेउ कउनि सवतिया, धो<sup>२</sup> बिलमाय ॥ ५९ ॥

मध्या उत्कठिता

जोहति परी<sup>१</sup> पलेंगिआ, पिय के वाट ।  
वेचेउ चतुर तिरिअवा, धो<sup>२</sup> केहि हाट ॥ ६० ॥

५६—१ भौतन नैन कजरवा, है गो इर [ रहि०, २० ]

५७—१ भो, ० प्रातउ [ रहि०, २० ]

५९—१ भो [ २० ], भा [ रहि० ]

२ रहि [ रहि०, २० ]

६०—१ तीय अवनवा, २ केहि के [ रहि०, २० ]

### प्रौढा उत्कठिता

पिय पथ हेरत गोरिया, भा भिनुसार ।  
चलै न करहि पिअरवा, तुव इतवार ॥ ६१ ॥

### परकीया उत्कठिता

उठि उठि जात खिरकिया, जोहति बाट ।  
कत<sup>१</sup> वह आइहि मितवा, सुनी खाट ॥ ६२ ॥

### गणिका उत्कठिता

कठिन नींद भिनुसरवा, आलस आइ<sup>१</sup> ।  
वन दै मूरख मितवा, रहल लोभाइ ॥ ६३ ॥

### वासकसज्जा

प्रियतम का भागमन जानकर मभोग की तैयारी करनेवाली नायिका को  
'वासकसज्जा' कहते हैं ।

### मुग्धा वासकसज्जा

हरुए गवन नवेलिया, दीठि बचाइ ।  
पौढी जाय पलंगिया, सेज बिछाइ ॥ ६४ ॥

### मध्या वासकसज्जा

सुभग बिछाइ पलंगिया, अग सिंगार ।  
चितवति चाकि तरुनिआँ, दै दृग द्वार ॥ ६५ ॥

पाद्य० ६१—१ चलहु न करिहि तिरियवा, [ रहि०, २० ]

६२—१ कतहुँ न भावत मितवा, सुनि सुनि खाट । [ रहि०, २० ]

६३—१ पाइ [ रहि०, २० ]

प्रौढा वासकसज्जा

हंसि रहि हेरि अरसिआ , सहज सिंगार ।  
उतरत चढत पलंगिया , तिय कत वार ॥ ६६ ॥

परकीया वासकसज्जा

सोत्रत सव गुरलोगवा , जानेउ वाल ।  
दीन्हेसि खोलि खिरकिया , उठि क हाल ॥ ६७ ॥

गणिका वासकसज्जा

कांन्हेसि सवै सिंगरवा , चातुर गाल ।  
अइहँ प्रान पियरवा , ल मनि माल ॥ ६८ ॥

स्वाधीन पतिका

जिस स्त्री का पति मग्न उसके वश में रहे उसे 'स्वाधीन पतिका' कहते हैं ।

मुग्धा स्वाधीन पतिका

आपुहि देत जवकवा , गहि गहि पाइ ।  
आपु देत मोहिं पियवा , पान खनाइ ॥ ६९ ॥

मध्या स्वाधीन पतिका

पीतम करन पियरवा , कहल न जात ।  
गहत गढावत सोनवा , हियइ सिरात ॥ ७० ॥

प्रौढा स्वाधीन पतिका

मैं अरु मोर पियरवा , जस जल मीन ।  
चिडुरत तजत परनना , गहत अधीन ॥ ७१ ॥

### परकीया स्वाधीन पतिका

पिय जुग नैन चकोरवा, मो मुख चंद ।  
जानति हैं पिय अपने, मोहिं सुखकन्द ॥ ७२ ॥

### गणिका स्वाधीन पतिका

लै हीरन के हरवा, मोतिन माल ।  
मोहिं रहत पहिरावत, वस हुइ लाल ॥ ७३ ॥

### अभिसारिका

प्रियतम के पास सभोग के लिये सकेत स्थान में जानेवाली सकेत स्थान में उसे बुलानेवाली नायिका को 'अभिसारिका' कहते हैं।

### मुग्धा अभिसारिका

चलीं लिवाय नवेलिअहिं, सखि सत्र संग ।  
जस हुलसत गुदगुदवा, मत्त मतग ॥ ७४ ॥

### मध्या अभिसारिका

गहिरे लाल अद्रुअवा, तिय गज पाइ ।  
चढि कै नेह हथअवा हुलसत जाइ ॥ ७५ ॥

### प्रौढा अभिसारिका

चली रैन अँधिअरिया, साहस गाढि ।  
पायेल केरि कँकरिया, डारेसि काढि ॥ ७६ ॥

स० ७४—कविवर मतिराम के दृश्य दोहे का भाव भी ऐसा ही है —

अली धली नउएहि लै, पिय पे साज सिंगार ।

ज्यो मतग अइदार को, लिये जात गइदार ॥

### परकीया अभिसारिका

नील मनिन के हरवा, नील सिंगार ।  
किये रैन अँधिअरिया, धन अभिसार ॥ ७७ ॥

### गणिका अभिसारिका

धन हित कीन सिंगरया, चातुर बाल ।  
चली सग लै चेरिया, जहँवा लाल ॥ ७८ ॥

### शुक्लाभिसारिका

सेत कुसुम के हरवा, भूपन सेत ।  
चली रैन उजिअरिया, पिय के हेत ॥ ७९ ॥

### दिवाभिसारिका

पहिरि बसन अरतरिया, पिय के हेत ।  
चली जेठ दुपहरिया, मिलिरविजोत ॥ ८० ॥

### प्रवत्स्यत्पतिका

प्रियतम का विदेश जाना सुनकर आकुल होने वाली स्त्री को 'प्रवत्स्यत्पतिना' कहते हैं ।

### मुग्धा प्रवत्स्यत्पतिका

परिगा कान सखिअधा, पिय कर गोन ।  
रैठी कनक पलँगिआ, होइ के मोन ॥ ८१ ॥

### मध्या प्रवत्स्यत्पतिका

सुठि सुबुमार तरनिआँ, सुनि पिय गोन ।  
लाजन पोढि ओवरिया, होइ के मौन ॥ ८२ ॥

### प्रौढा प्रवत्स्यत्पतिका

वन घन फूलहिँ देसुआ , वगिअन बेलि ।  
तव<sup>१</sup> पिय चलेउ विदेसया , फागुन फेलि ॥ ८३ ॥

### परकीया प्रवत्स्यत्पतिका

मितवा चलेउ विदेसया , मन अनुरागि ।  
तिय<sup>१</sup> की सुरति गगरिया , रहि मग लागि ॥ ८४ ॥

### गणिका प्रवत्स्यत्पतिका

पीतम इक सुमिरिनियाँ , मोहिँ दइ जाहु ।  
जेहि जपि तोर बिरहवा , करव निवाहु ॥ ८५ ॥

### आगतपतिका

विदेश मे प्रियतम के आगमन पर प्रसन्न होनेवाली नायिका को  
'आगतपतिका' कहते हैं ।

### मुग्धा आगतपतिका

बहुत दिवस पर पियवा , आयेउ आज ।  
पुलकित नवल दुलहिया<sup>१</sup> , कर गृह-काज ॥ ८६ ॥

### मध्या आगतपतिका

पियवा पोरि<sup>१</sup> दुअरवा , उठि किन देखु ।  
दुरलभ पाइ विदेसिया , जिय<sup>२</sup> कें लेखु ॥ ८७ ॥

पाठा० ८३—१ चलेउ विदेस पियवा, फागुआ फेलि [ रहि० ]

'२०' म 'फेलि' की जगह 'बेलि' है ।

८४—१ पिय [ रहि०, २० ]

८६—१ बधुइआ [ ह० ]

८७—१ आय २—मुट अवरेख [ रहि०, २० ]

### प्रौढा आगतपतिका

आवन सुनत तिरिअवा, उठि हरखाइ ।  
तलफत मनहुँ मछरिया, जनु जल पाइ ॥ ८८ ॥

### परकीया आगतपतिका

पूछन<sup>१</sup> चली खरिया, मितवा तीर ।  
हरखित<sup>२</sup> अतिहितिअया, पहिरति<sup>३</sup> चीर ॥ ८९ ॥

### गणिका आगतपतिका

नोलगि मिटहि न मितवा, तन कइ पीर ।  
जौ<sup>१</sup> लगि पहिरि न हरया, जटित सुहीर ॥ ९० ॥

नायिकाएँ गुणों के अनुसार निम्न लिखित तीन श्रेणियों में विभक्त की जाती हैं । यथा —

(१) उत्तमा (२) मध्यमा और (३) अधमा ।

#### उत्तमा

प्रियतम के अवगुणों को देखकर भी जो नायिका रूप नहीं होती वह 'उत्तमा' है । यथा —

लख अपराध पिअरवा, नहिँ रिस कीन्ह ।  
बिहँसत चनन चउकिया, चैटक दीन्ह ॥ ९१ ॥

#### मध्यमा

प्रियतम के गुण-दोष के अनुसार मान और कोप करनेवाली नायिका 'मध्यमा' कहलाती है । यथा —

गाय० ८८—१ यौवन प्राण पिअरवा, हेरेउ आइ ।  
नलफत मीन तिरिअवा, जिमि जल पाइ ॥ [ ८० ]  
८९—१ पूछत, २ नेंहर खोज, ३ पहिरि सुचीर । [ ८० ]  
९०—१ जौ लगि पहिरि नखतिया, नख नग चीर ॥ [ ८० ]



बिन गुन पिय उर हरवा , उपट्टेउ हेरि ।  
चुप हुइ चित्र पतुरिया , रहिचख<sup>१</sup> फेरि ॥ ९२ ॥

### अधमा

प्रियतम के आदर करने पर भी जो गुमान ही करती रहती है वह नायिका 'अधमा' कहलाती है । यथा —

चार<sup>१</sup> चार गुरु मनवा , जनि करु नारि ।  
मानुष<sup>२</sup> औ गज मोतिआ , जो लगि वारि ॥ ९३ ॥

### नायक-वर्णन

स्त्रियों जिसे सानुराग देख वह 'नायक' है । यथा —

सुन्दर चतुर धनिकजा , जानिक ऊँच ।  
केलि कला परविनवा , सील समूच ॥ ९४ ॥

नायक के तीन भेद हैं — (१) पति (२) उपपति और (३) वैभिक

यथा —

### पति

पति उपपति वैसिकवा , त्रिविधि बखान ।  
विधि सो व्याहो गुरु जन , पति सो जान ॥ ९५ ॥

पाठा० ९२—१ मुख [ रहि०, २० ]

९३—१ बेरहि बेर गुमनवा, २ मानिक और गज मुकुता  
[ रहि०, २० ]

बरवा सं० ९५ हस्तलिखित पुस्तक में नहीं है । हमारी धारणा है कि यह बरवा निम्नांकित दोहे के आधार पर बना है —

पति उपपति वैभिक त्रिविधि , नायक भेद बखानि ।  
विधि सो व्याहो पति कई , कश्चि-कोविद मत जानि ॥

ले कै सुघर पुरुषवा<sup>१</sup>, आपन<sup>२</sup> साथ ।

छपरो<sup>३</sup> एक छतरिया, बरखत पाथ ॥ ९६ ॥

पति के चार भेद होते हैं — (१) अनुकूल (२) दक्षिण (३) शठ  
(४) धृष्ट ।

### अनुकूल

पर-स्त्री विमुख नायक 'अनुकूल' कहलाता है । यथा —

करत नहीं<sup>१</sup> अपरधवा, सपनेहु पीउ ।

मान करन काँ<sup>२</sup> सधवा, रहिगा<sup>३</sup> जीउ ॥ ९७ ॥

### दक्षिण

अनेक परिनियों से समान प्रीति रखनेवाला नायक 'दक्षिण' कहलाता  
यथा —

सप्रमिलि<sup>१</sup> करहिँ निहोरवा, हम कहँ देहु ।

चुनि चुनि चम्पक चुरियाँ, उच से लेहु ॥ ९८ ॥

### शठ

अपराध करनेवाला कपटी, परन्तु मिष्टभाषी, नायक 'शठ' कहलाता  
यथा —

छाड़ेउ लाज डगरिया, ओ कुल-कानि ।

करत रोज<sup>१</sup> अपरधवा, परि गइ घानि ॥ ९९ ॥

<sup>१</sup> ९६—१ सुरपिया, २ पिय के, ३ छइने [ रहि०, २० ]

<sup>२</sup> ९७—१ न हिय, २ की धेरियाँ, ३ रहि गइ हीय [ रहि०, २० ]

<sup>३</sup> ९८—१ मोतिन [ रहि०, २० ]

<sup>४</sup> ९९—१ जात [ रहि०, २० ]

### घृष्ट

जो अपराध करता है किन्तु जरा भी लजित नहीं होता, वह नायक 'घृष्ट' कहलाता है। यथा —

जहँवा जगेउ<sup>१</sup> रहिनियाँ, तहँवा जाहु ।  
जोगि नयन निरलजवा, कन मुसुकाहु ॥ १०० ॥

### उपपत्ति

परकीया के प्रेम पास नायक को 'उपपत्ति' कहते हैं। यथा —  
झाकि झगेखे गोरिया, आखिन जोर ।  
फिरि चितवनि चित मितवा, करन निहोर ॥ १०१ ॥

### बैसिक

गणिका के प्रेमी नायक को 'बैसिक' कहते हैं। यथा —  
लटकी<sup>१</sup> नील जुनुफिया, वसी भाय<sup>२</sup> ।  
मो मन वाग वधुइया, मान वझाय ॥ १०० ॥

उपर्युक्त नायका के अतिरिक्त नायक के तीन भेद और होते हैं —  
(१) मानी (२) वचन-चतुर ओर (३) क्रिया चतुर ।

### मानी

नायिका से मान करनेवाला नायक 'मानी' कहलाता है। यथा —  
अव<sup>१</sup> न जनम भर सरिया, ताकों वोहि ।  
पेंडलि गइ अभिमनिया, तजि गइ मोहि ॥ १०३ ॥

पाठा० १००—१ जात [ रहि० ]

१०२—१ जुनु अति नील अलकिया, २ लाय [ रहि०, २० ]

१०३—१ अव भरि जनम महेलिया, तकव न ओहि ।

[ रहि०, २० ]

### वचन-चतुर

वाक् चाक्षर्य से अपना काम सिद्ध करनेवाला नायक 'वचन चतुर' होता है। यथा —

सघन कुज अमरैया, सीतल छाँहि।

झगरत आइ कोइलिया, फिरि उडि जाहि ॥ १०४ ॥

### क्रिया-चतुर

छल क्रिया से अपना काम सिद्ध करनेवाला नायक 'क्रिया चतुर' होता है। यथा —

खेलत जानेसि टोलिआ', नन्दकिसोर।

छुइ वृषभान कुअँरिया, होइगा चोग ॥ १०५ ॥

### प्रोपित नायक

विदेश में विरह-वश व्याकुल होनेवाले नायक को 'प्रोपित नायक' कहते हैं। यथा —

रुखि अँचि अटगिया, तिय-सँग केलि।

कप धो पहिरि गजरया, हार चमेलि ॥ १०६ ॥

### दर्शन

दर्शन ४ तरह के होते हैं — (१) स्वप्नदर्शन (२) चित्तदर्शन (३) प्रवगदर्शन और (४) साक्षात् दर्शन।

१. यरवा सं० १०४ और १०५ 'र०' में माली के उदाहरण में दिय गये हैं।  
पाठ० सं० १०५—१ टोलवा [ रहि०, र० ]

२. यरवा सं० १०६ 'रहि०' और 'र०' में 'बैसिक' के उदाहरण में दिया गया है। पाठान्तर सिर्फ 'तिय' की जगह 'पिय' है।

## स्वप्नदर्शन

पीतम मिलेउ सपनवाँ, भा सुख-खानि ।  
 'आनि जगाणसि चेरिया,, भइ दुखदानि ॥ १०७ ॥

## चित्रदर्शन

पिय मूरति चितसरिया, देखत<sup>१</sup> वाल ।  
 सुमिरत<sup>२</sup> ओधि वसेखा, जपि जपि वाल<sup>३</sup> ॥ १०८ ॥

## श्रवणदर्शन

आयेउ मान विदेसिया, सुनु सखि तोर ।  
 उठि किन करसि सिंगरवा, सुनि सिख मोर ॥ १०९ ॥

## साक्षात्दर्शन

विरहिनि अउर विदेसिया, भे इक ठोर ।  
 पिय मुखहेरि<sup>१</sup> तिरिअवा, चन्द चकोर ॥ ११० ॥

## सखी-वर्णन

सरल स्वभाववाली सुन्दर स्त्रियों जिनमे नायक आर नायिकायें किसी प्रकार का भेद नहीं रखते 'सखी' कहलाती हैं। सखियों के कार्यक महन, शिक्षा, उपालभ और परिहास यह चार भेद हैं।

## महन

नायिका को बह्नाभूषणादि से शृङ्गार कराना 'महन' है। यथा —

पाठ० १०७—१ जाय [ ह० ]

१०८—१ चितवति, २ वितवति, ३ माल । [ रहि०, २० ]

११०—१ तक्त [ रहि०, २० ]

सखियन कीन सिंगरवा, रचि बहु भॉति ।  
हेरति नैन अरसिया, मुस<sup>१</sup>मुसुकाति ॥ १११ ॥

शिक्षा

नायिका को विनय आर विलासादि की सिखावन देना 'शिक्षा'  
। यथा —

छारुहु वइठि दुअरिया, मींढहुँ<sup>१</sup> पाव ।  
पिय तन पेरि गरमियो, विजन डोलाव ॥ ११२ ॥

उपालभ

नायक या नायिका की ओर मे उलाहना देना 'उपालभ' हे । यथा —  
चुप होइ रहेउ सँडेसवा, मुनि मुसुकाय ।  
पिय निज कर थिछननयो, दीन्ह उठाय ॥ ११३ ॥

परिहास

निस कार्य से नायक ओर नायिका को जानन्द प्राप्त होता हो उसे  
'परिहास' कहते हैं । यथा —

विहँसन भोह चढाये, धनुप<sup>१</sup> मनोज ।  
लावति उर अगलनियो, पेठिउरोज<sup>२</sup> ॥ ११४ ॥

पादा० १११—१ मुरि [ रहि०, २० ]

११२—१ मीजहु [ रहि०, २० ]

वरवा स० ११३ 'रहि०' में 'शिक्षा' के उदाहरण में दिया  
गया है ।

११४—१ धनुपमनीय } रहि०  
२ उठिउठि पीय }

# स्फुट रचनाएँ

## मदनाष्टक

### मालिनी छन्द

बहति भरति मन्दम् मैं उठी राति जागी ।  
शशि कर कर लागे सेल ते पैन बागी ॥  
अहह ! विगत स्वामी क्या करो मैं अभागी ।  
मदन शिरसि भूय , क्या बला आन लागी ॥ १ ॥

हर-नयन हुताश ज्वालया जो जलाया ।  
गति नयन-जलोधे त्वाक बाकी बहाया ॥  
तदपि दहति चित्तम् मामक क्या करोगी ।  
मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी ॥ २ ॥

हिम-ऋतु राति धामा सेज लोटों अफेली ।  
उठत विरह-ज्वाला क्यों सहारी सहेली ॥  
चकित-नयन वाला ! तत्र निद्रा न लागी ।  
मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी ॥ ३ ॥

मनसि मम नितान्तम् आइ के वासु कीया ।  
तन मन सब मेरा मानह छीन लीया ॥  
इति ब्रह्मति पडानी मन्मथाङ्गी विरगी ।  
मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी ॥ ४ ॥

कमल मुकुल मध्ये राति को पे सयानी ।  
लखि मधुकर बधम् तू भई री दिवानी ॥  
तदुपरि मधुकाले कोकिला देखि भागी ।  
मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी ॥ ५ ॥

तव यदन मयकी ब्रह्म की चोप वाढी ।  
 मुख फँलसि भूँ प चाँदते काति गाढी ॥  
 मदन मथित रभा देखते तोहि भागी ।  
 मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी ॥ ६ ॥

नभसि घन घनान्ते घनी केसि छाया ।  
 पथिक-जन-बधूना जन्म केना गँवाया ॥  
 अति चतुर मृगाक्षी देखते मान भागी ।  
 मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी ॥ ७ ॥

विगत घन निशीथे चाँद की रोशनाई ।  
 सघन वन निकुंजे कान्ह वशी रजाई ॥  
 सुत पति गत निद्रा स्वामियाँ छोड भागी ।  
 मदन शिरसि भूय क्या बला आन लागी ॥ ८ ॥



## शृङ्गार सौरठ

'रहिमन' पुतरी स्याम, मनडुँ जलज मधुकर लसे ।  
 कँ धा सालिग्राम, रूप कँ अग्घा धरे ॥ १ ॥  
 पलटि<sup>१</sup> चली मुसुकाय, दुति 'रहीम' उपजाय<sup>२</sup> अति ।  
 बानी सी उसकाय, मानो दीनी दीप की ॥ २ ॥

पान० २—१ पुलकि

२—२ उजियाय [ २० ]



दीपक हिये छिपाय, नवल बधू घर ले चली ।  
 कर विहीन पछिताय, कुच लखि निज सीस धुने ॥ ३ ॥  
 गई आगि उर लाय, आगि लेन आई जो तिय ।  
 लागी नाहिं बुझाय, भभकि भभकि बरि बरि उठे ॥ ४ ॥  
 एक नाहीं एक पीर, हिय 'रहीम' होती रहे ।  
 काहु न भई सरीर, रीति न वेदन एक सी ॥ ५ ॥  
 तुरुक गुरुक भरपूर, इचि इचि सुर गुरु उठे ।  
 चातक जातक दूरि, देह दहै विन देह को ॥ ६ ॥

## फुटकर-काव्य

### कवित्त

अति अनियारे, मानों सान दै सुधारे, महा—  
 विष के विपारे, ये करत परगत हैं ।  
 ऐसे अपराधी, देख अगम अगाधी, यहै—  
 साधना जुसाधी, हरि हिये में अन्हात हैं ।

स० ३—लाला भगवानदीनजी ने इमको दोहे के रूप में निम्न प्रकार लिखा है । देखिये 'सूक्ति-सरोवर'—पृष्ठ ४०७

नवल बधू घर ले चली, अंचल दीप छिपाय ।  
 कर न दिये करतार मोहिं, सीस धुने पछिताय ॥

इस सोरठे को अज्ञात कवि का माना है ।

धर धर बोरे, धातें लाल लाल डोरे, भये—  
 तौ हूँ तो 'रहीम' थोरे, विधना सकात हूँ ।  
 धाइक घनेरे, दुखदाइक हूँ मेरे, नित—  
 नेन-धान तेरे, उर वेधि वेधि जात हूँ ॥ १ ॥

### सवैया

सीखी है ऐसी 'रहीम' कहा, इन नेन' अनोखे धा नैह की नाँधन ।  
 ओट भये रहते न वनै कहते न वने विरहानल दाधन ॥  
 पुन्यन प्यारे सों भेट भई प पँ भौन कुसङ्ग मिल्यो अपराधन ।  
 म्याम सुधानिधि आनन की मरिष सखी सूधे चितैवेकी साधन ॥२॥

### कवित्त

पट चाहे तन, भेट चाहत छदन,  
 मन चाहत है धन, जेती सम्पदा सगहिथी ।  
 तेरोई कहाय कै, 'रहीम' कहै दीनयन्धु,  
 आपुनी विपति जाय, काके द्वार काहिथी ।  
 पेट भर खायो चहै, उद्यम बनायो चहै,  
 कुटुम जियायो चहै, काढ़ि गुन लाहिथी ।  
 जीविका हमारी, जो पँ औरन के कर डारी,  
 ब्रज के बिहारी, तौ तिहारी कहा साहिथी ॥ ३ ॥

## घनाक्षरी

वड़ेन सों जान पहिचान, तो<sup>१</sup> 'रहीम' कहा<sup>२</sup>,  
 जो पं करतार ही, न सुरदेनहार है ।  
 सीतहर<sup>३</sup> सूरजसों, प्रीति करी पंकज ने,  
 तऊ कज-चनन को जारत तुपार है ॥  
 उदधि<sup>४</sup> के बीच बस्यो, शकर के सीस बस्यो,  
 तऊ न कलंक नस्यो, ससि में सदा रहै ।  
 वड़े<sup>५</sup> रीझवार हैं, चमोर दरवार देख्यो,<sup>६</sup>  
 सुधावर<sup>७</sup> यार ए प, चुगत अंगार है ॥ ४ ॥

## सवैया

जाति हुती सखि गोहन में मनमोहन को लखि<sup>१</sup> कैं ललचानो ।  
 नागर नागि नई ब्रज की उनहुँ नंदलाल को रीझियो जानो ॥  
 जाति भई फिरि कैं चितई तव भाव 'रहीम' यहै उर आनो ।  
 ज्यों कमनेत<sup>२</sup> दमानक में फिरि तार सों मारि लै जात निमानो ॥५॥

पाठा० ४—१ कैं, २ काह, ३ सेरा हरि सूरज सों नेह कियो याही  
 हेत तऊ वै कमल जारि जारत तुपार है, ४ छीरनिधि  
 मॉहि, ५ उडो रीझिवार हे, ६ ह, कलानिधि सों यार  
 तऊ चाखत अंगार हे [ २०, रहि० ]

५—१ बहुरै [ २० ], २ कमनीय [ रहि० ]

दीन चहै करतार जिन्हें सुख, फौन 'रहीम' सक तहिँ टारे ।  
 उद्यम<sup>१</sup> कोउ करो न करो, धन आवत है विन ताके हँकारे ॥  
 देव हँसै सब<sup>२</sup> आपुस में विधि के परपच न कोउ<sup>३</sup> निहारे ।  
 घेरा भयो वसुदेव क थाम आ दुंदुभी वाजत नन्द के हारे ॥६॥  
 जेहि कारन धार न लाये कष्ट, गहि सम्भु सरासन दौय किया ।  
 न<sup>४</sup> हुनो समयो वनवासहु को पै निकास पिता वनवास दिया ॥  
 भजि<sup>५</sup> भेद 'रहीम' रह्यो न कष्ट करि राखी हुती उन हार दिया ।  
 विधियों न सिया रसधार सिया करगार सिया पियसार सिया ॥७॥

### दीहा

तारायन ससि रैन प्रति, खूर होहिँ ससि गैन ।  
 तदपि अधिरो है सखी, पीउ न देखे नेन ॥८॥

### भजन

छत्रि आजन मोहनलाल की ।

लाल काछनी काळे कर मुखली पीत पिछोरी साल की ॥  
 रक तिलक केसर को किये दुति मानो विधु-वाल की ।  
 बिसरत नाहिँ सराी मो मन ते चितग्रनि नयन बिसाल की ॥

पान० ६—१ उद्यम पौरुष कीने जिना धन आवत आपुहि हाथ पतारे,

२ अपनी अपना, ३ जात विचारे । [ २०, रहि० ]

७—१ गयो गेहहि ध्यागि के ताहि मर्म सो

निकारि पिता वनवास दिया ।

७—२ कहँ धीच रहीम रह्यो न कष्ट

जिन कीनो हुतो विन हार दिया ॥

[ २०, रटि० ]

नीकी हँसनि अधर सधरनि की छवि छीनी सुमन गुलाल की ।  
जल सों डारि दियो पुरइन पर डोलनि मुकुता माल की ॥  
आप मोल विन मोलनि डोलनि बोलनि मदनगोपाल की ।  
यह सरूप निरखे सोइ जानै इस 'रहीम' के हाल की ॥१९॥

ॐ

ॐ

ॐ

कमल-दल नैननि की उनमानि ।

बिसरत नाहिँ सखी मो मन ते मंद मद मुसुकानि ॥  
यह दसनन दुति चपला हू ते महाचपल चमकानि ।  
बसुधा की बसकरी -मधुरता सुधा पगी बतरानि ॥  
चढी रहे चित उर विसाल की मुकुतमाल थहरानि ।  
नृत्य समय पीताम्बर हू की फहरि फहरि फहरानि ॥  
'भावति श्री वृन्दाजन वज ते अनुदिन' आवन' जानि ।  
छवि 'रहीम' चित ते न टरति है सकलस्याम की वानि ॥१०॥

बरवै

या झरमें घर घर में, मदन हिलोर ।  
पिय नहिँ अपने कर में, करमै खोर ॥११॥  
ओंठ की चनन केवरिया, जो हों बाट ।  
उड़िग सोन चिरैया, पिंजर हाथ ॥१२॥

सुनिये विटप प्रभु पुहुप तिहारे हम  
राखिये हमें तो सोभा रावरी बढाइहैं ।  
तजि हौ हरप तो विरप है न चारो कट्ट  
जहाँ जहाँ जेहें तहाँ दुनी छवि पाइहैं ।

० —१ अनुदिन, २ आवन [ रहि०, २० ]

[ ३ जावन [ २० ]

सुरन चढ़ेंगे सुर नरन चढ़ेंगे हम  
 सुरवि 'रहीम' राथ हाथ ही त्रिफाइ हैं ।  
 देस में रहेंगे परदेस में रहेंगे  
 काह भेष में रहेंगे पै रात्रे रुहाइ हूँ ॥ १३ ॥

कलिन ललित माला वाज्राहिर जडा था ।  
 चपल चरण वाला चाँदनी में खडा था ॥  
 काँट तटविच भेला पीत सेला नवंला ।  
 अलि वन अलवेला याग मेरा अकला ॥ १४ ॥  
 कठिन कुटिल कारी देख दिलदार जुल्फें ।  
 अलिकलित निहारें<sup>१</sup> आपने दिल की कुल्फे ॥  
 सकल शशिकला को रोशनी हीन लेखा ।  
 अहह ! धजलला को किस तरह फेर देखा ॥ १५ ॥  
 दग<sup>१</sup> छकित छरीली छैलरा की छरी थी ।  
 मडि जटित रसीली माधुरी मूंदरी थी ॥  
 अमल कमल पेसा रूय से रूय देखा ।  
 कहि न सकत<sup>२</sup> जेसा स्याम का हस्त देखा ॥ १६ ॥  
 जरद वसन वाला गुल चमन देराता था ।  
 झुक झुक मतवाला गावता रेपता था ॥  
 धृतियुग चपला से कुडलें श्रमते थे ।  
 नयन कर तमाशे मस्त हैं धूमने थे ॥ १७ ॥  
 तरल तरनि सी हैं तीर सी नोक पाँरे ।  
 अमल कमल सी हैं दीर्घ हैं विल विपार<sup>३</sup> ॥

१५—१ अलक, २ विहारी ।

१६—१ छवि, ० मकी ।

मधुर मधुप हेरे मान<sup>१</sup> मन्ती न राखे ।  
 विलमति मन मेरे मुन्दरी श्याम आँखें ॥ १८ ॥  
 भुजग जुग किधा हैं काम कमनेत मोहें ।  
 नटवर ! तव मोहें बाँकुरी मान भोहें ॥  
 सुनु सखि ! मृदुयानी वे दुरुस्ती अकिल में ।  
 सरल सरल सानी कै गई सार दिल में ॥ १९ ॥  
 पकरि परम प्यारे साँपरे को मिलाओ ।  
 अमल अमृत प्याला फ्यों न मुझको पिलाओ ॥  
 × × × × × × × × × × ।  
 × × × × × × × × × × ॥ २० ॥

❧

❧

❧

## रहीम-काव्य

आनीना नटवन्मया तव पुर श्रीकृष्णया भूमिका ।  
 न्योमाकाश खखावराब्धि वसुवत् त्वत्प्रीतयेऽद्याग्रधि ॥  
 प्रीतस्त्व यदि चेन्निरिक्ष्य<sup>१</sup> भगवन् स्वं<sup>२</sup> प्रार्थित देहिमे ।  
 नोचेद् ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वेनादृशीं भूमिका ॥१॥

( अर्थ )—हे श्रीकृष्ण ! मैं तुम्हारे आगे इस भेष ( नाट्यरूप ) में नट  
 के समान उपस्थित हुआ हूँ और आज तक तुम्हारे प्रसन्नतार्थ ही मैंने ८४  
 लक्ष रूप धारण किये हैं । भगवन् ! यदि इस नटरूप से आप प्रसन्न हैं  
 तो जो मैं माँगता हूँ दीजिये ( मुक्त कीजिये ) । यदि न प्रसन्न हो तो

पाठा० १८—१ माल ।

१—१ चेन्निरिक्ष, २ स्वं [ रहि० ]

कहिय फिर कभी ऐसी भूमिका म न आओ, अर्थात् जायागमन स  
रहित कीजिये ।

रत्नाकरोऽस्ति सदन गृहिणीच पद्मा,  
कि त्रेयमस्ति भवते जगदीश्वरगय ॥  
राधा गृहीत मनसे मनसे चतुभ्य,  
दत्तं मया निज मनस्तदिदं गृहाण ॥२॥

(अर्थ) — हे जगदीश्वर ! आपका समुद्र ( रत्नाकर ) घर है, लक्ष्मी  
गृहिणी है । इसलिये आपसे क्या देने योग्य है ? अर्थात् कुछ नहीं । परतु  
आप का मन राधा न चुरा लिया है । वह आप के पास नहीं है । अतः  
आपसे रिक्त मन के स्थान में मैंने अपना मन दिया । उसे ग्रहण कीजिये ॥

अहिल्या पापाण प्रकृति पथुरासीन कपि चम् ।  
गुहो भूच्चाडालस्त्रितयमपि नातनिज पदम् ॥  
अह चित्तेनाश्मा<sup>१</sup> पथुरपि तत्रर्चादि करणे ।  
क्रियाभिश्चाडालो रघुवर ननामुद्धरसि किम् ॥३॥

अर्थ — अहिल्या पापाण होने से प्रकृति है, बन्दरो की सेना पशु है,  
आर गुह चाडाल वा । परन्तु नीलो को आपने निज लोक में स्थान दिया ।  
इस में चित्त से पथर हैं, आपकी पूजादि करने में पशु हैं आर क्रिया  
करने में चाडाल हैं । जय मुझ में उन तीनों गुण हैं फिर भी हे राम ! मेरा  
उदार क्या नहीं करने ? ।

यद्यात्रया व्यापकता हताते भिदेकता चाक्पस्ता च नुत्या<sup>१</sup> ।  
ध्यानेन बुद्धे परता परेश<sup>२</sup> जात्याजताक्षन्तुमिदार्हसित्त्व ॥४॥

पाग० ३—१ चित्तेनाश्म

४—१ स्तुत्या, २ परेश [ रेडि० ]



अर्थ—हे परमात्मन् ! जय हम आपकी याता के लिये नीचाँ में जाते हैं तो हम मान लेते हैं कि आप यहाँ नहीं हैं। इसमें आपकी व्यापकता नष्ट करते हैं। नमस्कारादि करने से जीव और मल की एकाग्रता व वाणी से परे होने की क्षमता नष्ट करते हैं। यदि एक माना जाय तो नमस्कार का किम को कर, जो वाणी से परे है उसमें नमस्कार आदि कथन व स्तुति कैसे की जा सकती है। हे परेश ! ध्यान करने से बुद्धि से परे होने के गुण को नष्ट करते हैं और अवतार मानने से आपकी अज्ञता को नष्ट करते हैं। अतः इन कृत्यों पर हमें क्षमा कीजिये। कितना गूढ़ भाव भरा हुआ है !

दृष्टातत्र विचित्रता, तस्लता, मै था गया वाग में ।  
काचित्तत्र कुरगशावनयना, गुल तोड़ती थी सड़ी ॥  
उन्नत<sup>१</sup> भ्रू धनुषा कटाक्ष विशिखै घायल किया था मुझे ।  
तस्सीदामि सदैव मोह जल धौ, हे दिल गुजारो शुकर ॥५॥

अर्थ—मैं वाग में विचित्र वृक्ष और लताओं को देखकर गया था। कोई भृगुशावरुनयनी वहाँ सड़ी फूल तोड़ रही थी। धनुषाकार तनी हुई भौ पर कटाक्षरूपी बाण रखकर उसने मुझे घायल किया। उसमें सदैव मोह-समुद्र में डूबा हुआ पा रहा हूँ। हे दिल, उसका धन्यवाद कर।

एकस्मिन्दिवस्मावसान समये, मै था गया वाग में ।  
काचित्तत्र कुरग वाल नयना, गुलतोड़ती थी सड़ी ॥  
ता दृष्टा नवयौवनां शशिमुखी<sup>१</sup>, मै मोह में जा पड़ा ।  
नो जीवामित्प्रया विना धिणु प्रिये, तू यार कैसे मिले ॥६॥

पाठा० १—१ उन्मद ।

( ६—१ शशिमुखी [ रहि० ]

अर्थ—एक दिन संध्या के समय मैं याग में गया था कोइ सुगशावक-  
पत्नी स्त्री फूल तोड़ रही थी। उस शशिमुखी नयनाम्ना को देख कर मैं  
नेह में जा पड़ा। हे प्रिये सुन ! तेरे बिना मैं न जीऊँगा। अतः, हे मिर !  
मुझे किस प्रकार मुझे मिलेगा।

प्राप्य चलानधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु वधुवगपु।

नापहत नोपहत नोपहतं किं कृत तेन ॥ ७ ॥

अर्थ—घबल (अस्थिर) अधिकारों को पाकर यदि शत्रुओं का  
उपकार न किया, मित्रों का उपकार न किया और भाई-बंधों का भी  
उपकार न किया तो उसने क्या किया अर्थात् कुछ नहीं किया।

अच्युत चरण तरङ्गिणि, शशि शंकर मौलि मालती माले।

ममतनु वितरण समये, हरता देया न मे हरिता ॥ ८ ॥

अर्थ—रहीम गंगाजी से प्रार्थना कर रहे हैं कि विष्णु भगवान  
के चरणों से प्रवाहित होनेवाली हे गङ्गे ! मुझे तारने के समय शकर  
बनाना, जिसमें मैं तुम्हें मिर पर धारण कर सकूँ, विष्णु मत बनाना।

१ भगवति मुनिकन्ये तारये २ पुण्यवत,

सतरति निज पुण्यैस्तत्र किन्ते महत्वम्।

यदिह यवन जातं पापिन मा पुनीहि ३।

तदिह तत्र महत्व तमहत्व महत्वम् ॥ ९ ॥

अर्थ—हे गंगाजी ! पुण्यवानों को तारना, जो अपने पुण्य के  
बनाप से ही तार जाते हैं, इसमें तुम्हारा क्या महत्व है। यदि यवन से

पान० ९—१ सुर धुनि, २ पुण्यवत मुनीये,

३ पुनातु।

उत्पन्न हुए ( मुझ ) पापी को तारो तो तुम्हारा महत्व भी है । यही महत्व है ।

पाठक ! मुसलमान होते हुए भी रहीम के य भाव कितने सत्य हृदयवाही और भक्ति-पूर्ण हैं !



# टिप्पणियाँ

## दोहावली

- १—हेरान = खो जाना, लीन हो जाना ।  
अर्थ—यह तो सब जानते हैं कि समुद्र में वूँद समा जाता है, पर बात थोड़े ही जानते हैं कि समुद्र त्रिन्दु में समा जाता है । अतः हम कहते हैं कि हम आश्चर्य को फोन किम से कहे, क्योंकि खोजने पर तो अपने आप ही में लीन हो जाता है ।
- २—अगम्य (अ + गम्य) जहाँ तक किसी की पहुँच न हो अर्थात् अगम्य ।
- ३—काहि = किमको ।
- ४—जननी-जठर = माता का पेट ।
- ५—बाजू = डैना, पर । बाज = एक शिकारी चिड़िया । साहेब = लाला, ईश्वर ।
- ६—व्याधि = रोग । भेषन = दवाई ।
- ७—संतत = सदैव । सुधि = खबर ।
- ८—दीन लम्बे समय जगत काँ = दीन सब ससार को देखता है, अर्थात् दीन का मुँह ताकता है ।
- ९—उपादि = उपद्रव, झगडा । तिहिं = उसने । यदि = ध्यर्थ ।
- १०—खरि = खली । गुरु = गुड । गुलियाये = गोली बनाकर ।
- ११—जगत उधार कर = संसार से पार होने का ।
- १२—पूरन = पूर्ण । परम गति = मोक्ष । धोखे भाव से = भूल से ।
- १३—पावत को—धाम = काम क्रोध आदि में सदैव कैसा रहने का भी पूर्ण मोक्ष पा जाता है ।

१४—जम के किंकर = यमवृत । फानि = लिहाज, मर्यादा ।

१५—मुकरि = इनकार । मङ्गन = भिखारी ।

१६—कही सुनै = कही हुई सुनते हैं ।

सुनि दुप हरेँ = सुन कर दुप दूर करते हैं ।

१७—नेवाज = रक्षक ।

१८—अर्थ—हे रघुवीर जय हाथी पर गाढ़े दिन थे, अर्थात् गज-भ्रातृ युद्ध में जय वह हूयने पर था, उस समय आपकी ही उसने प्रार्थना का थी वही (प्रार्थना) मैं इस समय कर रहा हूँ, क्योंकि अच्छे दिनों के सभी निय होते हैं, बुरे दिन आने पर आप ही सहायता करते हैं ।

करी = कर रहा हूँ । करी = करी है । करी = हाथी । तीर = किनारा । यहाँ जल के किनारे में मतलब है । गाढ़े दिन = अच्छे दिन । गाढ़े दिन = बुरे दिन ।

१९—अर्थ—गहीमजी अपने ही को संबोधन करके कह रहे हैं कि—हे रहीम ! तू ने अपने मन को सुन्दर चक्रोर बना डाला है । चक्रोर सदैव चन्द्र पर दृष्टि रखता है और तेरा मन-चक्रोर श्रीकृष्णचन्द्र में लगा रहता है ।

चक्रोर = एक पक्षी का नाम है । यह अपने दो गुणों के लिये बकि जगत् में प्रसिद्ध है । एक चन्द्रमा की ओर देखना दूसरे अँगार खाना ।

२०—पत = हज़मत ।

ज्वारी = जुआ खेलने वाला, श्री कृष्णजी ने शकुनी और कारवाणियों से पाँडवों की रक्षा की थी ।

चोर = ब्रह्माजी । उन्होंने ग्वाल-बालों और गायों का हरण किया था जिनसे उन्हें श्रीकृष्णजी ने ही छुड़ाया था ।

लंगर = दुशासन आदि इन कौरवों से द्रोपदी की रक्षा की थी ।

२१—अर्थ—रहीमजी कहते हैं, यह सभी जाते हैं कि लक्ष्मी चला है। क्या न चचल हो, आदिपुरूप (नारायण) की स्त्री है न !

वृद्धावस्था में निराह करनेवालों को इसमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

पुरूप पुरातन = आदि पुरूप ( नारायण )

२२—फजीहति = दुर्दशा ।

नोट—पर स्त्री या पूज्य स्त्री को अपनी स्त्री समझनेवालों की अवश्य दुर्दशा होती है ।

पाठक २१, २२ न० के दोहों को ध्यान पूर्वक देखेंगे तो पता चलेगा कि जो भाव व शब्दों का ओज २१ न० के दोहे में है वह २२ न० के दोहे में नहीं है। संभव है यह रहीम का न हो, किसी अन्य कवि का हो—अब रहीम की छाप आ जाने से रहीम की सम्पत्ति मानी जाती हो।

२३—अर्थ—प्रश्न यह है कि चन्द्रमा में श्यामता क्या है ? इसके उत्तर में रहीमजी कहते हैं कि चन्द्रमा के नीचे खानदान को तो देखो ! इसके बाप का कोड़ पानी तक नहीं पीता है। यह तो पूरा स्याह घट्टा ही होता अगर इतने रक्तरे को न पहुँचता। यह बड़ा आदमी हो गया है, आकाश तक इसकी पहुँच है, इसमें स्याही घुल गई है, पर असलियत कहाँ चले। कुछ श्यामता अब भी शेष है।

तेहि कै गढ़ल अकास लौ = उसकी आकाश तक पहुँच है।

२४—अर्थ—नाव जल प्रवाह के साथ तो आसानी से बही चली जाती है पर प्रवाह के विपरीत ले जाने में इस रस्मी में खींचना पड़ता है। अब रहीमजी कहते हैं कि ये मनुष्य, इस प्रकार रूप जल-प्रवाह में शरीर रूप नौका कर्मवदा बही जा रही है। इस ओर ( परमात्मा की ओर )

चाँच अर्थात् मन रस्सी को परमात्मा में बाँध (लगा) ओर फिर इस शरीर रूप नौका को बजाय समुद्र-प्रवाह में बहने देने के परमात्मा से मिला।

उद्दि ओर = उस ओर अर्थात् परमात्मा की ओर। जल में उल्ल नाव ज्यो = जैसे जल प्रवाह के प्रतिकूल नाव चलाने में। गुन = रस्ती।

२६—अर्थ—जहाँ अहकार (अहम्) होता है वहाँ परमात्मा का वास नहीं होता और जहाँ परमात्मा का वास है वहाँ फिर अहकार नहीं रह सकता। अतः रहीमजी कहते हैं कि रास्ता तब है दोनों का गुजर एक साथ नहीं हो सकता। आप, आपन = आपा, अहकार।

२७—आन = आन, दूसरा। बिलग = अलग।

२९—अर्थ—कवि ने इस दोहे में तीन भावों पर तुलनात्मक विचार किया है। देखिये—

रहीम कहते हैं कि यदि मैं आँखों में अजन लगाता हूँ, अर्थात् आँखों से ईश्वरोपामना करता हूँ तो कष्टसाध्य है (यहाँ कवि का आशय योगादि क्रियाओं से हँ जिफा प्रयोग करना कठिन होता है, अजन आँखों में लगाने से कुछ किरकिरापन भी मालूम होता है), और सुरमा लगाता हूँ, अर्थात् मुसलमान प्रणाली से आराधना करता हूँ तो मन अनिच्छा प्रकट करता है, अर्थात् ठीक ढग प्रतीत नहीं होता। अतः जिन नेताओं से हरियाली अर्थात् हरि (भगवान्) के दर्शन होते हैं उन्हीं नेताओं पर मैं निछावर हो जाता हूँ।

विशेष—अजन, सुरमा और हरि (हरियाली) तीनों नेताओं की सुखकारक वस्तुएँ हैं। अजन और सुरमा का सूक्ष्म रूप होता है अतः आँखों में लगाकर दिखाई नहीं देते। हरियाली स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है और उसको देखकर आँखों को शान्ति भूमी मिलती है। हरियाली को बँध आर डाक्टर दोनों ने आँखों के लिये उपयोगी बताया है।

इस भाव से लक्षणों द्वारा सगुण हरि की उपासना को निर्गुण ईश्वरो-  
नामना ( चाहे वह आर्पण प्रणाली से हो अथवा आत्मी प्रणाली ) सेना में  
उत्तम ठहराया है ।

रहीम के अन्य कथनों से भी इसी भाव की पुष्टि होती है ।

अब कवि की तीव्र दृष्टि का तो विचार कीजिये कि इस छोटे से  
एक दोहे में तीन प्रकार के महान सिद्धान्तों पर तुलनात्मक विचार करके  
अपनी भावनानुसार अतिम निर्णय कितनी सुन्दरता से कर दिया है ! कविता  
के भाव की उत्कृष्टता घरम सीमा को पहुँची हुई है ।

अंजन = संस्कृत आर्पण शब्द और आँखों में लगाने की एक दवा का  
नाम है जो काजल आदि से बनाया जाता है ।

सुरमा = फारसी भाषा का शब्द है, यह भी आँखों में लगाया  
जाता है ।

हरि—पाराणिक संस्कृत शब्द है और यहाँ हरियाली और भगवान दोनों  
अर्थों में प्रयुक्त हुआ है ।

३०—अर्थ—जब प्राण समाधिस्थ होकर पवित्र परा के अन्दर जाकर  
रहना चाते हैं तब तीनों वृत्तियाँ (पश्यन्ति आदि) निश्चल हो जाती हैं और  
मन, बुद्धि, अहंकार शुद्ध होने से आत्मा ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर पवित्र  
हो जाता है ।

कवि के उच्च कोटि के वेदान्त ज्ञान को तो देखिये !

तुरिय—वह अवस्था, जिसमें जागृति, सुप्ति और सुषुप्ति तीनों का  
मिल हो अर्थात् समाधि ।

तिय—तीन ( पश्यन्ति, मध्यमा, धैर्यरी ) ।

म—पवित्र ।

परा—तीनों गुण ( सत्, रज, तम ) में रहित ।



३०—अर्थ—रहीम जी कहते हैं धर्म के लिये पढ़कर अपना शरीर नया देना, मर जाना भार कठिन कलेस सह लेना अच्छा है क्योंकि यह तो आप का उपदेश है। पर क्षमा कीजियेगा प्रभो ! धर्म पर सब कुछ अर्पण करनेवाले राजा बलि को आपने 'वामन' रूप धारण करके छला ! प्रभो, आचरण द्वारा आपने यह अच्छा उपदेश दिया ॥

कैसी मधुर चुटकी हैं ! “ऊच निवास नीच करतूती” वालो की कैसी मोठी भर्त्सना है ! “पर उपदेश कुसल बहुरे, जे आचरहि” ते न घनेरे” का क्या ही मार्मिक चित्त खींचा गया है !

३३—अर्थ—रहीमजी कृष्णचद्रजी को उपालभ देते हुए कह रहे हैं कि मोहन ! यह आपकी प्रीति की रीति अनोखी है। आपकी प्रीति क्या है, आकाशी त्रिया है। अपनी ओर खींचने से आप दूर भागत हैं परन्तु दील दिखाने से आप पास ही आ उपस्थित होते हैं, अर्थात् जब मनुष्य आप से मिलने का प्रयत्न करता है तब आप दर्शन नहीं देते हैं और जब ही वह आप से खिंच बैठता है, आप सामने आ उपस्थित होते हैं।

विशेष—कहते हैं कि रहीमजी एक बार कृष्णदर्शन के लिये वृन्दावन गये थे पर मुसलमान होने के कारण इन्हें मन्दिर में नहीं घुसने दिया गया। अतः यह क्रोधित हो घूमकर बैठ गये। तब श्रीकृष्णचद्रजी ने इन्हें स्वयं दर्शन दिये जिस पर इन्होंने यह दोहा कहा था।

घसदिया = आकाशी दिया, कार्तिक मास में लोग प्रायः एक राति को एक खड़े हुये बाँस के ऊपर डोरी के सहारे दिया टाँगतें हैं। यह दिया डोरी खींचने से ऊपर चढ़ जाता है और डोरी ढीली करने से नीचे आ जाता है।

३४—अर्थ—जय इन्द्र ने यज्ञ पर क्रोध करके मूसलाघार जल धारण करना प्रारंभ किया था तब श्रीकृष्णचद्रजी ने गोवर्द्धन पर्वत उठाकर

इसके नीचे धन-वासियो की रक्षा की थी, पर जय वही धन-रक्षक श्रीकृष्ण  
 धन को त्यागकर दारका जा वसे तो धनवाला भा की ओर से  
 उपालम देते हुए रहीमजी कहते हैं—हे गोपाल (कृष्ण) ! अगर धन  
 की पेम ही अवस्था करनी थी अर्थात् सूना ही छोड़ना था तो गोवर्द्धन  
 पहाड़ उठाकर पहले उसकी रक्षा ही क्यों की ! आपका कष्ट उठाना व्यर्थ  
 था और हम से यह कष्ट उठाया नहीं जाता ।

हवाल = दना । नाहक = व्यर्थ, बिला प्रयोजन

३५—पूर = चढ़े हुए, रक्ने हुए ।

३६—अर्थ—रहीमजी कहते हैं कि मनुष्य इस शरीर के मोह को  
 छोड़ सकता है जिसमें नेत्र रूपी दो दीपक सदैव जलते रहते हैं और  
 न प्रकाश में सासारिक पदार्थों की मुखकारी छटा का ज्ञान कराते रहते  
 जब कि एक दीपक अधकार का नाश करके दीपक-युक्त स्थान के सत्र  
 थों को प्रकट कर देता है ।

३७—मनुभा = मन । नाँय = नहीं ।

३८—मनुष्य को इच्छाओं का दास नहीं होना चाहिये ।

मनसा = इच्छाएँ ।

नोट—पाठक न० ३७ और ३८ के दोहों को यदि ध्यानपूर्वक  
 पढ़ा तो पता चलेगा कि जो शब्द-योजना २ भाग की उत्कृष्टता न० ३८  
 दोहे में है वह न० ३७ के दोहे में नहीं । समझें, न० ३७ का दोहा  
 का न हो ।

३९—केतिक = कितनी । विहाय = व्यतीत होना ।

धन = मृत्यु-समय ।

४०—भेषज = आपधि । समरथ = समर्थ ।

४१—भार = गेज (माया का बधन) । भार = भाड़, भाग की भट्टी

४०—अर्थ—रहीमजी कहते हैं कि चरण छुप अर्थात् अनेक प्रकार से अनुनय विनय की आर मस्तक छुपे अर्थात् सासारिक ज्ञान प्राप्त कर प्रिचार किया परन्तु माया ने पिण्ड नहीं छोड़ा। जैसे ही ईश्वर ने हृदय छुआ अर्थात् ईश्वर ने हृदय में वास किया वैसे ही माया ने साथ छोड़ दिया। माया ईश के आधीन है।

४३—धरि = मिट्टी। पूरि = पूर्ण।

विशेष—यहुधा ऐसा दृष्टिगोचर होता है कि हवा और मिट्टी की एक गाँठ सी बँध जाती है। इसे लोग बगूला या बवडर कहते हैं। यह बहुत दूर तक चक्कर खाता शीघ्रता से उड़ता चला जाता है, भास-भास के तिक आर कागज आदि भी इसके चक्कर में पड़ कहीं के कहीं जा पड़ते हैं, पर जैसे ही हवा और मिट्टी की गाँठ खुली फिर केवल मिट्टी ही मिट्टी रह जाती है। रहीमजी ने यही भाव मनुष्य शरीर पर घटाया है जिसमें हवा मिट्टी आदि का संयोग है। पाठक कवि की पैनी निगाह को तो देखिये।

४४—पूतरा = पुतला। वाय = वायु, हवा।

नमी = सील, सर्दी

नोट—न० ४४ ओर ४५ के दोहे समानार्थक हैं। न० ४५ के बरती का ज्ञात होता है। संभव है, यह रहीम का न हो।

४६—अर्थ—देव, गधर्व, इन्द्रादि लोक केवल भोग्यलोक माने जाते हैं, अर्थात् वहाँ पर जीव अपनी करणियों का फल भोगते हैं कुछ कर्म नहीं करते हैं। परन्तु यह संसार, जो मृत्युलोक कहलाता है इसमें प्राणी भोग भी है और करता भी है, इसीसे इनको कर्मक्षेत्र भी कहा जाता है। देवादि भी पुण्य क्षीण होने पर इसी लोक में जन्मते हैं। कर्म होने के कारण इसी लोक से मुक्ति मिल सकती है और लोकों से न इसीसे रहीमजी ने कहा है कि यह संसार एक बाजार है जिसमें

पुण्य ही सौदा है। अतः ऐ मनुष्यो ! जो सोदा तुम्हें गरीबना इ अर्थात् जो कर्म करने हैं कर लो। जागे जाकर फिर सोदा नहीं मिलेगी और लोका में तो केवल भोगना ही भोगना है। रास्ता भी दूर का तै करना है। न जाने फिर कब इस कर्मक्षेत्र में आने का माभाग्य प्राप्त हो।

सौदा = चीज वस्तु अर्थात् पाप पुण्य।

हाट = बाजार अर्थात् जगत्। घाट = रास्ता।

४७—अर्थ—रहीमजी कहते हैं—इस संसार में दिन-रात कृच का लगावा चलता रहता है आर हर घड़ी इस पडाव मे मुसाफिर कृच करते रहते हैं। इस संसार में आकर क्या कोई अब तक मुकाम करवे देखा हुआ दिखाई देता है ? यह जगत् तो आवागमन का क्षेत्र है।

आठो जाम = आठा पहर अर्थात् दिन-रात।

४८—अर्थ—संसार में यही नियम दृष्टिगोचर हो रहा है कि पहिले फूल लगता है तब उसी जगह फल लगता ह। पर रहीमजी ने इस दोहे में अमगति अलकार की अनोखी टटा दिग्ललाई है। रहीमजी का भाव सुनिये —

रहीमजी कहते हैं कि काम माली ऐसा चतुर है कि पहिले उसने बाघिडा के उर पर फल (कृच) लगाये तब उहें देखकर कृष्णजी के उर पर फूल (आनन्द) हुआ। यही तो चमत्कार है कि फल पहिले लगे और बादे। सो भी एक यहाँ तो दूमरा वहाँ !

४९—कुचों का अग्रभाग (मुख) काला क्यों होता है ?

रहीम ने सुनिये —

जो अनुचिन कार्य करनेवाले हैं वह अत में नगो हो ही जाते हैं अर्थात् अनुचिन कार्य का परिणाम अच्छा नहीं। इसी से रहीम जी कहते

हैं कि कुच दूमरों के हृदयों को गेधते ( सालते ) हैं अतः उनका मुन काला होता ही चाहिये ।

अक = पाप, अपराध, चिन्ह । परिनाम = अंत

५०—रहीमजी कहते हैं मन-महाराज का आँखों के समान दीवान और कोई नहीं हैं । आँखें जिम्मे देकर रीझती हैं, यम मन-महाराज तो उसके हाथ बिक ही जाते हैं । ठीक ही है । नफे-नुकसान का जिम्मेवा दीवान है, मन महाराज तो कौंस्टीट्यूशनल महाराज है ।

५३—रहीमजी कहते हैं कि नेत्रों में तो नमक है और अघों में मधु । अतः दोनों में किसको कम दर्जे का बतलावें यह जरा टेढ़ा सवाल है क्योंकि मोठे पर नमकीन अच्छा लगना है और नमकीन पर मीठा । पर से तृप्ति नहीं होती । दोनों चाहिये दोनों ।

५४—बाँकी चितवन = तिरछी नजर । गर्मी = जलन, ताप पाठक देख, कवि ने कटाक्ष के वर्णन में कैसा कमाल किया है ।

सलोने = सुन्दर, नमकीन

५५—सूर्योदय होने पर कमल विकसित होकर पितहि ( जल को अपुनी पशुडियों से ढककर सूर्य-ताप से रक्षा करता है और चन्द्रोदय हो पर सिकुड़कर उये ( जल को ) चन्द्र किरणों की शीतलता देकर आनन्दि करता है । सुपूत कमल तो अपने पिता के सुप हेतु ही विकसित होते और सिकुड़ता है—उमका न कोई शलु है और न मिला ।

कवियों ने सूर्य को कमल का मिला और चंद्रमा को शलु माना है, रहीमजी की उक्ति मय मे निराली और अनेगरी है ।

कुल—कमल = कुल श्रेष्ठ, सुपूत ।

५६—सहि के = जानबूझ कर । बेसाहियो = बेसाहना, खरीदने मोल लेना । चैन = आराम ।

५७—विरहिणी नायिका के हृदय को विरह ने अधकारमय बना डाला है। अवधि धीतने पर नायक से मिलना होगा, वस यही एक आशा उसके अंधेरे हृदय में रह-रहकर चमक जाती है। जैसे भादा की अंधेरी रात में रह रहकर जुगनू चमक उठते हैं।

विरह अधकार के घनत्व को आशा-खद्योत कहीं तक दूर कर सकती है, यहा विचारणीय समस्या है।

६०—सुलगे = जले। बुझि-बुझि = ठंडे हो होकर। बुझि गये = ठंड हो गये।

६१—भस्म को लोह पानी में घोलकर लगाते हैं, पर वह सूखकर लुप्त हुए स्थान को भी रूखा फर देती है। इसी से रहीमजी कहते हैं कि यह मन तो बनाय (विलकुल) जल भुनकर भस्म हो गया है क्योंकि इसको जिससे लगाइये वही रूखा हो जाता है।

बनाय = विलकुल।

६२—विलोक्यहि = देखते ही। धाक्यो = धक जाता है। ताकहि = देखते ही। आप—मन के लिये कहा है।

६४—सम्पति सुचहि = धन इकट्ठा करते हैं।

६५—धौटनारी = पीसनेवाली।

६६—पारै धीच = आलस्य करना, ढील डालना। महावरा—धीचु न पारै पारै।

सिवि आर दधीच की कथा पुराणों में विस्तार पूर्वक वर्णन की गई है। सिवि काशी के राजा थे। वह यज्ञ-स्था में आये हुये कवृतर के रक्षार्थ अपना सिर तक देने को उद्यत हो गये थे। तब भगवान ने प्रसन्न हो इन्हें अपने लोक भेज दिया था। दधीचि मुनि थे। इन्होंने देवताओं के

रक्षार्थ अपना शरीर त्याग दिया था। इनकी हड्डी से चून् बनाया गया जिम से वृत्तासुर मारा गया था।

६७—गाढ़े = कठिन समय में। थॉमैं = थॉमती हैं, खड़ा रखती हैं। बरहि = बरगद को।

बरेह = बट-वृक्ष की जटाओं को बरेह कहते हैं।

६८—गोत = वश। बूहरी = बड़ी।

६९—मृग = हरिण, चन्द्रमा के रथ में हरिण जुते हैं। सतत = सौदते हैं।

वाराह = सुअर। पुराणों में वाराह के दाँत पर पृथ्वी स्थित बतलाई गई है।

७०—धीम = कम, न्यून। रचै = अच्छा लगना।

७१—नाद = स्वर, गाना। रीझि = प्रसन्न होकर।

७२—दर दर = दरवाजे-दरवाजे। मधुकरी—सात घर से राने के लिये माँगने की वृत्ति को कहते हैं।

विशेष—ऐसा ज्ञान होता है कि यह दोहा कवि ने आदशाह की अप्रसन्नता के समय जब वह दीनावस्था में अपना निर्वाह कर रहा था याचको से कहा था।

७३—दानि = दानी। दरिद्र तर = दरिद्री से दरिद्री। रानावत = खुदवाते हैं। भरितन सूची परे = नदियों के सूख जाने पर।

विशेष—नदी जब सूख जाती है तो उसके तट वासी उसकी धार में गड़े सोद लेते हैं। उनमें पानी निकलता है, जिमको वे अपने काम में लाते हैं। कवि ने इन्हीं को कुआ ब्रताया है।

इस दोहे से रहीम के भाव दानी के प्रति कितने उच्च ज्ञात होते हैं।

७४—केवल दारौरीक बल से लक्ष्मी प्राप्त नहीं होती। लक्ष्मी प्रा

करने के लिये ओर भी साधन चाहिए । अगर ऐसा न होता तो क्या भीम के समान बली पुरप राजा विराट के घर अपना पेट भरने के लिये रसोइया का काम करता ।

जत्र पाँचो पाँडव १३ वें वर्ष गुप्त भेष में राजा विराट के यहाँ रहे थे तत्र भीमसेन ने रसोइया का रूप धारण किया था ।

७५—सुहाइ = अच्छा लगना । ररु = चाहे ।

७६—सभु भये जगदीस—समुद्र मथन के समय सबसे प्रथम लाहल विप निकला था जिसकी गर्मा से संसार में ताहि ताहि मच गई । तत्र महादेव जी से प्रार्थना की गई उन्होंने उमे पी लिया और जगदीम कहलाये ।

राहु कणयो सीस—अमृत वितरण के समय जत्र छल में देवता रूप धारण कर राहु ने अमृत पी लिया तत्र भगवान ने चक्र में उसके दो कड़े फर दिये जो राहु तथा केतु कहलाय ।

७७—रहिला = घात ।

७८ = पानी = मान, जल, आर्घ्य । सून = सूना, शून्य । ऊररै = अच्छा त होना ।

७९—समूच = पूरा पूरा, यथोचित । दील = कमी ।

८०—पयात ( प्रयाण ) = प्रस्थान, चलने का उद्योग ।

८१—भुरमु = प्रतिष्ठा, गौरव । गँवाइ कै = सोकर ।

८२—धीम = लुप्त । प्रभुता = पेश्वर्य, बड़प्पन ।

८३—दिगै = पास । बसे रहे कतु नाहिँ = जन रहना व्यर्थ है ।

८५—घर = धड़ । खेत = क्षेत्र, भूमि ।

८६—का घान = क्या घात । चिधरन = फटे कपड़े । मोहात = न देती है ।



८७—दुख सहि जिये बलाइ = दुख सह कर कभी न जीना चाहिये ।  
महावरा—“दुख सहकर मेरी बलाइ जियै”

८८—अर्थ—रहीम जी कहते हैं कि हे मज्जनों, पन्नगयेलि और पतिव्रता स्त्री से रति ( प्रेम ) की इच्छा करना बड़ा ही नाजुक है । तुपार के प्रेमाखिगन को सहा न करके पन्नगयेलि घेंचारी स्वयं जल मरती है । परन्तु सती से क्लुपित प्रेम की इच्छा करनेवाला पुरप ही मर्य हो जाता है ।

रति = प्रेम - इच्छा । पन्नगयेलि = पान की घेलि । सत = सतीत्वपन ।  
दहियान = जलनाता है ।

८९—कादिये = निकालिये । भेद = रहस्य ।

९०—प्रमान = मर्यादा । उमडि चलै = उमड़ चलना, बढ़ कर बह निकलना । पार = पाद, किनारा ।

९१—अति = ज्यादाती, मर्यादा का उल्लंघन । फ़ानि = मर्यादा ।

अर्थ—रहीमजी कहते हैं कि मनुष्य को अति कभी न करनी चाहिये । अपनी मर्यादा पर सदैव कायम रहना चाहिये । देखो सहिजन के वृक्ष में फूल बहुत आते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि लोग अप शकून समझकर डाल-पत्तों-समेत काट डालते हैं ।

९२—अघाय = अघाकर, पेट भर के ।

९३—रहीम इस टोहे में कटुवादियों की सजा तजवीज करते हैं ।

९४—कुल्हार = कुल्हारी । टुक = टुकड़ा । कसकत रहै = सालती रहै । हूक = आन्तरिक दुख ।

९६—भोग = भोजन । सफरिन = मछलिया से । बक = बगुला ।

९८—राजा तो गुणियों को छोटा समझता है और गुणी राजा को छोटा समझते हैं, परन्तु रहीमजी कहते हैं कि ऊँचे आकाश से लेकर नीची पृथ्वी तक देखो तो मर एक ही माया है अर्थात् उस परमात्मा की

रत्ना का ही चमत्कार है । यहाँ न कोई छोटा है आर न कोई बड़ा । उसी रत्नात्मा ने किसी को राज दिया है और किसी को गुन ।

९९—नियहत = निराहना, पूरा करना । मैत्र-तुरग = मोम का मोहा ।

१००—मैत्राव = मझयाना, चलना । डिगिहा = डगमरोही, हिलोग ।

१०१—घागा = डोरा । चटकाइ = चटकई, जख्दी ।

१०२—मछली का प्रेम पानी में है, अतः मारकर फाटे जाने पर जल ही स्वच्छ होती है और पकाकर खाये जाने पर भी (प्यास के मिस) पानी ही की इच्छा रखती है ।

१०३—हरदी आर चूना मिलकर लाल रंग बन जाता ।

१०४—अंगुवहि = झेलते हैं, अपने ऊपर सहते हैं ।

१०५—रानि = भंडार । रम = रस, आनन्द । प्रीति में गॉंठि ही हानिकारक है ।

१०७—लेन देन के प्रीति = बजारू प्रीति । यानी = दौंव ।

१०८—डेकुली = सिँचाई के लिये कम गहरे कुण में पानी निकालने का एक यन्त्र जिसमें एक ऊँची लकड़ी के ऊपर एक आड़ी लकड़ी बीचो-बीच इस प्रकार ठहराई रहती है कि इसके दोनों छोर धारी धारी से नीचे झर हो सकते हैं । इसके एक छोर में मिट्टी छोपी या पत्थर दँधा रहता है और दूसरा छोर जो कुण के मुँह की ओर होता है, डोली की रस्मी से बंधी होती है । यह मिट्टी या पत्थर के बोझ में डोल कुण में से बाहर आता है ।

सूचना—डेकुली छोटी-छोटी कम गहरी कुणों में चलायी जाती है और घड़िया का पानी अपनी ओर न डालकर दूसरी ओर डालते हैं, अतः

दूसरी ओर बैठे मनुष्य की ओर से ढालनेवाले के प्रति यह उक्ति है ।

पाठक देखें दृष्टान्त का कैसा अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है ।

१०९—रेत = बालू ।

११०—टेरि = पुकार । हेरि = दिखाई देता है ।

१११—जब कटु अटकै काम = जब कटु काम पड़े ।

११२—मडये—तर कै गॉंठि = विगाह-मडप के नीचे वर वधू ;  
वधू को मिलाकर जो गॉंठ लगाई जाती है ।

भाठ गॉंठि = सम्पूर्णरूपसे, मग तरफ से ।

आठ गॉंठि एक महावरा है । सुशहाल व्यक्ति आदि के लिये इसका प्रयोग निम्न प्रकार करते हैं —

“भाई फलाने का बनौका आठो गॉंठ बना है ।

बुरे भाव में भी प्रयोग करते हैं —

“आठो गॉंठ कुम्भैत ह”

११३—सरवर = बराबरी, समता । चातक = पपीहा ।

प्रेम पपीहा का सा होना चाहिये ।

११४—वर्षाऋतु में कोयल का मोन साधना ( न बोलना ) तं सभी जानते हैं पर कहना कवि ही जानते हैं । देखिये, रहीमजी कोयल न बोलने का कारण दादुरों का बोलना बताते हैं । कैसी रहस्यमय रोज है !

पावसु = वर्षाऋतु । दादुर = मेंढक । यत्ता = बोलनेवाले ।

११५—रहीमजी कहते हैं कि मन्त्र प्रकृति के लोगों को मारने से भ्रं उनके अवगुण गुण में परिणत नहीं हो जाते । जैसे बाध को बूटने में उसकी पेटन पकी पड़ती है और वह उड़ता भी है । पेटव जाता नहीं, उल्ट पड़ा पड़ता है और यदता है । पाठक देखे, अरुणर के मेनापति आर बजीरे आजम की पैनी निगाह कहीं तक पहुँची है !

सिराहिँ = होना, बन पड़ना । बाध = मूँजकी डोरी, बान । मुरहा =  
पेंठनदार । मुरहा हँ = पेंठनदार होकर । अधिकाहिँ = बढ जाते हैं ।

विशेष—“मूँज बकोठा और गँवार, जैमोइ कूटो तैसोइ सार” अर्थात्  
मूँज को जिाना ही कूटो उतनी ही वह मुलायम हो जाती हं । इसी से  
यान बनाने के लिये मूँज को रूथ कूटते हैं, फिर उसमे यान बटते हैं ।  
बट जाने पर पानी में भिगोकर फिर कूटते हैं जिससे बटने से जो पेंठन  
पड़ती है वह इरुसों बैठ जाती है और रस्ती पकी हो जाती है । और पेंठन  
के कारण जो शिकन पड़ी हुई होती ह वह निकल जाती हं आर यान बढ  
कर अपनी पूरी लम्बाई को प्राप्त हो जाता है ।

११६—सहज धरि साइ = स्वभावही से काट खाते हैं, अर्थात् काटना  
प्राकृतिक गुण है ।

११७—दिया = दीपक । नाँद = चौपायों के चारा रखन का बर्तन, ब्याह  
पाटियो आदि के समय इस बर्तन में कढ़ी अथवा साग-तरकारी  
भी रखते हैं ।

विशेष—कुम्हार मिट्टी को अच्छी तरह बनाकर चाक पर रखता हं ।  
चाक में एक छेद होता हं । उसमें एकड़ी ढाछर पहले वह खूब घुमा  
देता है जिसमे चाक देर तक चकर काटता रहता हं और चाक के घूमते  
समय उस पर रखी हुई मिट्टी से मन चाही चीज बना लेता हं ।

११८—शृगपा अनुराग = शिकार मे प्रेम ।

भ्रमत् = घूमता फिरता हं ।

११९—पत्थर को पानी में डालने वह भीग तो जाता हं परन्तु अन्दर  
से तर नहीं होता ( गलता नहीं ) । अत रहींमजी कहते हैं कि यही दशा  
मूरख के की भी है । उसकी अबल पर सदा पत्थर ही पड़े रहते हैं ।  
है परन्तु उसकी ज्ञान दृष्टि को सूझता कुछ भी नहीं,  
वह कोई लाभ नहीं उठा सकता ।

पर्याप्त = परधर । सीसै = सीझा, तर होना । बूझै = समझना ।  
सूझै = दिखाना ।

१२०—कचन = बालो । विमेषि ( विशेष ) = अधिक

१२१—रहोमजी पेट को सरोधन करके कहते हैं कि—भई पेट, तुम पीठ होते तो अच्छा होता, क्योंकि भूखे रहने से तो तुम लोगों में स्वाभिमान का नाश करते हो आर भरे होने पर दृष्टि को विगाड़ते हो अर्थात् जिनको माल-मसाला खाने को मिलता है वह पर स्त्रियों पर कुदृष्टि डालते हैं और जिन्हें पेट भर खाने को नहीं मिलता वे मान-मर्यादा का ख्याल न करके इधर-उधर खोसे कावते फिरते हैं ।

१२२—रहीम जी कहते हैं मैंने इस पेट को बहुतेरा समझाया कि अगर तू बिना खाये रहे तो किसी की क्या मजाल कि नाराजगी दिखावे । सच है, यह पेट ही सब कुछ सहता है ।

अनखाये = बिना खाये । अनखाय = नाराज हो ।

१२३—हाथी के दो दाँत निकले होते हैं यह तो सभी जानते हैं, पर उन्हें शिक्षा की सामग्री बनाना कवि ही जानते हैं —

रहीमजी कहते हैं कि बड़े पेट के भरने में दुख भी बड़ा उठाना पड़ता है । देखो न, बड़े पेटवाले हाथी ने इसी दुख से दहल कर दो दाँत बाहर निकाल दिये हैं । बेचारा करे क्या, बड़े पेटवाला ठहरा !

हहरि कै = घबड़ाकर, दहल जाकर ।

दाँत निकालना टीनता का द्योतक होता है ।

१२४—रहीमजी कहते हैं कि शिकार पर छोड़े हुए बहरी और बाज आकाश तक चढ़कर फिर क्यों नीचे गिरते हैं ? स्वतन्त्रता प्राप्त करके फिर क्यों उमने खोते हैं ? क्या करें बेचारे ! पेट बड़ा पापी है ॥ पेट के लिये

फिर बघन में आकर पड़ते हैं । ( शिकार म से शिकारी थोड़ा हिस्सा उन्हें भी देता है )

१२५—कडु = कुछ । काज सरे = काम पूरा होने पर ।

भंडरिन = भाँवरे , फेरा । सिरायत = मिरा देते हैं, डाल देते हैं, ढंढा कर देते हैं ।

प्रयोग—

सुमट सरीर नीर घारी भारी भारी जहाँ

सूरन उछाह कूर कादर डरत हैं । 'बुल्मी'

१२६—कूर = निकम्मा, अकर्मण्य, सुस्त ।

१२७—अन्तरदाव = भीतरी भाग, हृदय की जलन । जिहि = जिस पर ।

१२८—ग्हति = जलाती है ।

१२९—मुसलमान लोग पुनर्जन्म नहीं मानते हैं, अतः रहीम ने पुनर्जन्म को इस रूप में सिद्ध किया है कि स्मृति हो आने से ध्यान में उपका चित्त-रूप नेतों के सामने आनाता है । अजानर में प्रत्यक्ष शरीर होता है और स्मृति में संकल्प शरीर ।

१३०—कृष्ण को गिरधर कहना आर हनुमान को गिरधर न कहना दुनिया की चाटुकारिता का प्रमाण है ।

१३१—रहीमजी कहते हैं कि अरे अड ! अपने चिकने चिकने पत्ते खेसकर थावला मत बन, अर्थात् अधिक गर्व मत कर, हाथियों के घक्के और कुल्हाड़ी की चोट सहनेवाले वृक्ष दूसरे ही होते हैं ।

कैसी अच्छी अन्योक्ति है !

वका = धक्का । शोड = उन्मत्त होना, पागल बनना । कुल्हाड़िन = कुल्हाड़ा ।

१३२—जब घृद्धावस्था में बाल सफेद हो जाते हैं तो बहुत म

शाकीन पिजाव लगाकर उन्हें काला कर लेने हैं। ऐसे ही शौकीनों को लक्ष्य करके रहीमजी ने लिखा है कि अब थोड़ी सी जिन्दगी के लिये कौन मुँह काला करे। काला मुँह तो उन्हें करना चाहिये जिन्हें दूसरे की स्त्री छलना हो या बुढ़ापे में ब्याह करने की हविस हो। देखिये, कैसा चुभता हुआ व्यग है।

कौन करे मुँह स्याह = काला मुँह कौन करे अर्थात् पिजाव कौन लगावे।

१३३—ससारी माया के चक्काचौंध में अंधे बने मनुष्य सुन्दर दीनता के आनन्द को क्या जानें ? बेचारी दीनता कितनी अच्छी है कि मनुष्य को परमात्मा का स्मरण कराती है और अशरण शरण दीनप्रधु को उसका वधु बना देती है।

१३६—चारा = भोजन। छाला = खाल जैसे मृगछाला।

ज्यो— स्वर देइ = मृदंग के पुढों में आटा लगाया जाता है जिससे स्वर अच्छा निकलता है।

१३७—बारे = जलाने से, लड़कपन में। बड़े = बुझाने से, बड़े होने पर।

कवि की सूधी तो देखिये ! बारे और बड़े—छेठ हिन्दी के शब्दों द्वारा श्लेष का निर्वाह किया है, जिसके लिये अन्य कवि संस्कृत शब्दों का आश्रय लेते हैं।

१३८—बड़े = बरे, जलने से, उड़ा रहता है—जीवित रहता है।

गये = न रहने से

नोट—स० १३७, १३८ को ध्यान-पूर्वक देखने से पता चलता है कि न० १३७ के दोहे के शब्दों में कवि ने चोज पैदा करके जो अपनी प्रतिभा दिखाई है वह न० १३८ के दोहे में कहाँ है। उसके सामने तो यह दोहा केवल भरती का ज्ञात होता है। सभ्य है, यह दोहा रहीम का न हो।

१३९—उलवान पुरुषों को अपने बल का दुरुपयोग कभी न करना चाहिए। सदैव स्मरण रखना चाहिए कि परमात्मा ने बल दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के लिये नहीं दिया है। देवों, हाथी में अधिल बल किन्हीं होगा ? परन्तु वह कितना नम्र होकर रहता है—अपनी नीनता प्रकट करने के लिये दाँत दिखाता है और नाक रगड़ता हुआ चञ्चल है !

धाक = रौत्र

१४०—हाथी के सिर पर धूल डालने का कारण रहीमजी यह बताते हैं कि हाथी वह रज बूँदा करता है जिसके स्पर्श से मुनि-पत्नी (अहिल्या) ने मोक्ष पाई थी। उस रज का स्पर्श करके वह भी मुक्त होना चाहता है।

१४१—नात = सवध, नानेदारी। गडही = छोटी तलाई।

पानि = पानी।

१४२—रोजी = आमदनी।

१४३—समाहि = समाना, प्रविष्ट होना। वे परन = बिना पल।

१४४—अनहोनी = जिसकी सम्भावना न हो। बसाय = बस चले, जोर चले।

विशेष—ईश्वर पास रहता है और मिलता नहीं।

१४५—गति = शक्ति। कौ = कौन। धौ = न जाने। केहि = किसको।

१४७—नमसर-पजग कियो = पृथ्वी से लेकर आकाश तक बाणों का पिता बना दिया।

अवमेप = असीम, बहुत।

अर्जुन ने अपनी माता की पूजा-हेतु पेरवत हाथी को आकाश से बाणों का मार्ग बनाकर उतारा था और खाडव वन जलाने के लिये उसके ऊपर बाणों की छत बना दी थी जिसमें इन्द्र एक बूँद भी पानी की न डाल सक।



१४८—लिलार = माया, भाग्य । बनारसी = बनारस के रहनेवाले ।  
मगहस्थान = काशी में गंगा के उस पार को मघा की पाटी कहते हैं ।  
लोग कहते हैं, वहाँ मरने से मनुष्य नरकगामी होता है ।

१४९—इस दोहे की ध्वनि में प्रकट है कि जीव कर्म करने में  
स्वतन्त्र और फल भोगने में परतल है ।

१५०—रहीम कहते हैं इसको सूत्र विचार लो । भावी ऐसी प्रकृत  
है कि इमने सूत्र को जलाया अर्थात् तग किया है अतः हे, भगवान् ! तू  
इस भावी को जला ।

१५१—होनहार प्रबल होती हैं । तभी तो पांडव जैसे बली और  
समृद्धशाली व्यक्तियों को भी वन में रहना पड़ा और महाप्रतापी शंभु की  
अर्द्धाङ्गिनी होकर भी पार्वती जी बाझ सुनी जाती हैं ।

गणेश और स्वामिकार्तिक पार्वती के उदर से उत्पन्न हुए नहीं  
माने जाते ।

१५२—आपने हात = अपने वश में ।

१५३—विषया = वाग्मना, मोह आदि ।

चमन करि = के कर ।

१५४—एटी = बुरी । घटि = नीच ।

१५५—बादि = अधिक । मानसर = मानसरोवर ।

१५६—भुवन भरत = संसार का पालन करता है ।

घटि एडुँ उल्लूक = उल्लूक नहीं देखें ।

१५७—तोयवन्त = पानीवाले ।

१५८—विषान = सींग ।

१५९—रहीमजी कहते हैं कि जिनको विधना ने ही बड़ा धन  
दिया है, दूषण कहकर उनको कौन धरा सकता है । चन्द्रमा को क्षीण

कहो, कुम्हा कहो, परन्तु इसमें क्या ! दूषण होने पर भी तारागणों से तो वह बड़ाही रहता है ।

१६०—पत्थर की भीत भरराकर बैठ गई । अत्र यही धोग्या है कि कान पत्थर कहाँ किम् काम में लगेगा । जो पत्थर एक साथ कंधे से कंधा गाये भीत में लगे थे वे अत्र क्या फिर मिलेंगे ?

भीत = दीवाल । भररानी वहि ठाम = भरराकर उसी जगह बैठ गई ।

१६१—निकसति = निकलती है । नाहि = इनकार ।

१६२—याचफता = माँगने की वृत्ति ।

बावन आँगुर गात से तारपर्यं वामनावतार से है जो बलि से माँगने के लिये भगवान ने धारण किया था ।

१६३—पूंग = डग ।

१६४—लघुता = छुट्टाई, छोटापन । अनुप = बहुत ।

मख = यज्ञ ।

१६५—विलगाय = अलग हो जाता है । भीर = दुख, विपत्ति ।

१६६—सगे = स्नेही, संबधी । कसौटी = एक प्रकार का काला पत्थर जिसे पर सोना परचा जाता है ।

मित्रता के परखने की कसौटी विपत्ति है ।

१६८—छोह = प्रेम ।

१६८—अन्त = अन्यथ । भाय = प्रेम भाव ।

कहाँ भाँर को भाय = भाँरे का प्रेम भाव ही क्या है ?

१७०—कदली = केला

१७१—उखारी = ऊपर का खेत । रमसरा = उखारी के बीच में एक पौधा जमता है जिसकी पत्ती आँवले को सी होती है पर उसमें रस नहीं होता है ।

१७२—कगारी = शराय येचनेवाली । मदहि = शराय ही ।

१७३—ओछे = नीच । मैना = इशारा । उरज = स्तन, कुच । उमेठे जाहि = उमेठे जाते हैं, पकड़कर मसले जाते हैं ।

१७४—नीर चुरा घरियार । प्राचीन समय में एक वर्मन में पानी भरकर उसमें एक छिद्र-युक्त सम्पुटी (कटोरी) रखते थे । यह सम्पुटी और उसमें का छिद्र इस अन्दाज से बनाये जाते थे जिससे कटोरी एक घटे में पानी से भरकर डूब जाती थी तब १ घटा माना जाता था और घड़ियाल बजाया जाता था अर्थात् पानी की चोरी तो सम्पुटी (कटोरी) करती है और पिटता विचारा घड़ियाल है । राजा-महाराजाओं के यहाँ अब भी इसमें कभी २ काम लिया जाता है ।

सम्पुटी = कटोरी । घरियार = घटा ।

१७६—करिखा = कालोंच, स्याही ।

१७८—मुक़्ताकर = मोती बनानेवाला ।

१७९—अंगार = जलता हुआ कोयला । तातो = गरम ।

सोरे = ठंडे ।

१८१—देवरा = छोटा देव । पड़ो = भैंस का वच्चा ।

१८२—सरगपताल = ऊँच-नीच अर्थात् भला-बुरा ।

कपाल = माथा, कपार ।

१८३—जानि परत = पहचाने जाते हैं, समझ पड़ते हैं ।

१८४—चुपकरि रहउ = शांत हो जाओ । दिनन कर फेर = दिनों का चक्कर अर्थात् बुरे दिन ।

१८५—घूर = घूरा, वह स्थान जहाँ पर गाँव का कूड़ा करकट बाला जाता है ।

१८७—वित = धन । हित = स्नेह ।

१८८—खियाँ आम तौर से द्रीपक अचल-पट से ही बुझाती है ।

१८९—घटि = नीच । रथ-वाहक = रथ हॉम्लेवाले, सारथी ।

पाँच रूप पाँदव = पादव जय तेरहवें वर्ष गुप्त रूप में रहे थे उस समय पाँचों भाइयों ने अपने को छिपाने के लिये अलग-अलग पाँच रूप बना रखे थे । यह कथा महाभारत में विन्तार पूर्वक वर्णित है ।

रथ-वाहक नलराज = जय राजा नल जुआ में राजपाट सत्र हार गये थे तब कुछ दिनों के लिये अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के मारधी बन कर रहे थे ।

१००—ज्यां लक्ष्मण पारासर के नाज । इस कथा का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है ।

१०१—भोर = सवेरा ।

१०२—अधिक = शिकारी । रधिरै = रधिर ही ।

नोट—शिकारी हिरण के बाण मारता है, हिरण भाग खड़ा होता है पर शरीर में चुभे हुए बाण की जगह से जो रक्त बिन्दु रास्ते में गिरते जाते हैं उनसे शिकारी को हिरण के मार्ग का पता चल जाता है अर्थात् जो रक्त, बाण लगने के पहले हिरण का पोपक था वही अब शिकारी को मार्ग बताता हुआ भक्षक बन रहा है । इसीमें रहीम ने कहा है कि विपत्ति के समय दोस्त भी दुश्मन बन जाते हैं ।

१०३—अवधनरेश = महाराजा रामचन्द्र

नोट—रीवाँ-नरेश चित्तकूटपति कहे जाते हैं, क्योंकि उनके पूर्वजों ने प्रथम चित्तकूट पर ही अधिकार किया था ।

यह टोहा रहीम ने एक याचक को मंतुष्ट करने के लिये रीवाँनरेश को लिखा था, क्योंकि इस समय बादशाह की अप्रसन्नता के कारण इनकी ईनायत थी ।

१०६—पामरी = नीच, तुच्छ । कामरी = कमबल । जाड़ = जाड़ा ।

१०७—भरम = मान, प्रतिष्ठा, गौरव ।

नोट—एकवार कवि गग ने रहीमजी को निम्नांकित दोहा लिख कर भेजा था —

सीसे कहाँ नवात्र जू ऐसी देनी देन ।

ज्यों ज्यो कर ऊँचे करौ, रयो रयो नीचे नैन ॥

इसी के उत्तर-स्वरूप रहीमजी ने यह दोहा कहा है जिसमें आपके चित्त की निरभिमानता का पता चलता है ।

१९८—अम्युज = कमल । अम्यु = पानी ।

१९९—महारामा तुलसीदास के कथनानुसार “काने खोरे कूबरे कुठिल कुचाली जान” सब ससार कुबड़े को घुरा समझता है पर लोग रथ में जिस जगह बैठते हैं उसके ऊपर कुबड़ी छत से ही छाया की जाती है फिर भी लोग उसके नीचे बैठते हैं, इमीलिए तो रहीम ने कहा है कि स्वार्थ बड़ी बुरी चीज है । स्वार्थ के कारण ही तो ससार में लोगों के अवगुण भी गुण समझ लिये जाते हैं । कूर = कुबड़ा ।

रथ कूर = रथ में बैठने का स्थान, जिस पर कुबड़ी छत से छाया की जाती है ।

२००—वापुरो = विचारा, गरीब । जोग = योग्य ।

२०२—गरब = गर्व । लेस = किचिन्माल ।

सेस (शेषनाग) = फुड़ नहीं ।

२०३—बड़े न बोलें बोल = बड़ी बात नहीं कहते हैं ।

२०४—उवत = उदय होता । अथवत = अस्त होता ।

२०६—दाग = धब्बा, छाप । सही = निशानी, उल्लापन दाग

अम्वार = नम्वर की छाप घोड़े के लगती है पर वह छाप सवार की निशानी (पहिचान) का काम देती है अर्थात् उस नम्वर से प्रसिद्ध सवार होता है ।

विशेष—घोड़-सवार मेना में यह नियम है कि सवार का नम्वर घोड़े

के ऊपर छाप दिया जाता है। यह प्रथा अकबर बादशाह के समय से चली है।

२०७—गज-ग्राह युद्ध में जग गज पर विपत्ति पड़ी थी तब भगवान विष्णु ने ही उसकी सहायता की थी, इसीसे रहीम ने कहा है कि घड़े सदैव घूमरों के दुःख से दयादर् होकर सहायता करते हैं पहिचान हो, चाहे न हो।

२०८—प्रीति को पारि = स्नेह का द्वार अर्थात् स्नेह।

मूकन = मुखा, घूँसा।

मुकों के डर में नींद दूर नहीं हो जाती बल्कि प्राणी माल को अपनी गोद में स्थान दे सान्त्वना प्रदान करती है। उड़ों का यही नियम है।

२०९—राइ-रौदा = एक करौदे की विस्म होती है जो करौदे से बड़ा होता है। करौदा एक छोटा सा पक्ष फल होता है।

इतराइ = इतराना, अभिमान करना।

२१०—रहीम एजूर सरीखे बड़ा से घृणा करते हैं।

२११—दमामा = धौंसा, नगाड़ा।

२१२—पचवत आगि चकोर = चकोर का प्रेम चन्द्र पर है अतः वह उसकी ही ओर देखता रहता है यहाँ तक कि प्रेमावेश में आग को चंद्र अंश समझकर खा जाता है। एक अन्य कवि चकोर के आग खाने का कारण कुठ ओर ही बताता है।

प्रिय सो मिला भभूत वनि, ससि सेखर के गात।

यहै रिचारि अँगार को, चाहि चनेर चरात ॥

‘कोई कवि’

२१३—कदाचि = कदाचित्, शायद।

२१४—प्यादा = पैदल। फरजी = बजीर। माह = यादशाह।

तागीर = स्वभाव, आदत, असर से।

नोट—प्यादा और फरजी शतरज के मुहरे होते हैं। प्यादा सदैव सीधा चलता है और फरजी तिरछा सीधा मग तरफ चल सकता है। प्यादा थडकर फरजी बन जाता है पर फरजी फरजी ही रहता है।

२१६—उत्पात = उपद्रव।

जो भृगु मारी लात = एक समय भृगुमुनि इस परीक्षा के लिये निकले कि देवे ब्रह्मा, विष्णु ओर महेश में कोन बड़ा है उस समय भृगुमुनि ने विष्णु की छाती में लात मारी पर भगवान ने बजाय क्रोध के शान्ति-पूर्वक मुनि का आदर किया।

२१७—रेप = निश्चित। मेस = सूँटी।

२२०—गुरेता = गोरव। फरह = सोहती है। फवि आई है = सोहती आई है। अनत = दूसरी जगह। बतौरी = एक रोग जिसमें शरीर में फोडे की तरह गून की गाँठें सी हो जाती हैं।

२२०—अगोट = भिन्नता (अभुट)

नरठ = युग, जोड़ा।

नोट—चापड़ के खेलनेवाले जानते हैं कि जग तक गोदों का जोड़ बँधा रहता है एक भी गोदी नहीं मारी जाती है जोड़ फूटने पर दोनों मार जा सकती हैं।

एक कवि ने कहा भी है —“नरठ के फूटे उठिजात बाजी घोपर की”।

२२२—विधा (व्यथा) = दुख। शोय = छिपा।

अठिछेहें = हँसी करेंगे।

२२३—तम ओर काजल का स्वरूप एक ही होता है।

२२४—अरज गरज = अनुनय विनय। रिनियाँ = ऋण लेनेवाला।

२२५—भाव = अच्छा लगे। कचपची = छोटे-छोटे तारागणों का समूह, कृतिका नक्षत्र।

२२६—नयो = नवना।

चीता = यह शिकार के समय नरता है ।

चोर = इसका नवना नम्रतापूर्वक चापलूसी की रात करना है ।

कमान = जब तक कमान न नवे, तीर नहीं चल सकता है ।

अर्थात् इन तीनों का नवना हानिकारक ही है ।

२२७—इतराह = इतराना, टमक दिखाना ।

नोट—शतरज के खिलाड़ी जानते हैं कि प्याग फरजी राफर  
रजी ही की चाल चलने लगता है ।

२२८—धरिया = रहँट में लगी हुई छोटी-छोटी टिलियाँ जिनमें पानी  
भर कर आता है ।

रहँट = पानी निकालने का कल ।

रहँट—पानी निकालने का एक प्रकार का कल (यन्त्र) होता है जिसकी  
गरारी पर होकर टिलियाँ आती जाती हैं । इसमें टिलियाँ मालाकार रूप में  
बंधी जाती हैं और रहँट की गिरों पर रखी होती हैं । जैसे ही पंच घुमाया  
जाता है मालाकार टिलियाँ ऊपर नीचे आने जाने लगती हैं । जो टिलियाँ  
नीचे जाती हैं उनका मुँह पानी की ओर होता है और वे गाली होती हैं  
जैसे ही उनमें कुँप से पानी भर जाता है वे ऊपर को आने लगती हैं और  
उनकी पीठ पानी की ओर हो जाती है । गरारी पर आकर वे गाली हो  
जाती हैं और फिर उनका मुँह पानी की ओर हो जाता है । कवि ने ओठे  
अनुप्य पर इसी भाव को धरया है ।

२२९—गरीमी = हीनता, मित्राड । न चर्ग = नम्र बनकर चर्ग ।

२३०—रगरि = रगड़कर, घिस कर । गिट्टा = कपूर द्रव्य जिसे  
दूसरे का पीडा का अनुभव न हो । र्वीम = हीनता ।

२३१—नोखिना = स्त्री ।

२३२—पीके = तीरम, प्रेमजा ।

२३३—निरम्य = मूढा ।



२३५—घार = देर । छार = राख ।

चोरी करि होगी रची = होली में लकड़ी ई धन आदि लोग चुराकर रखते हैं ।

२३६—कदली-सुवन = केले के पत्ते । सुडील = सुडर शरीरवाले । अपत = बिना पत्ते के ।

नोट—केले के पत्ते पेडी में चिपटे हुये निकलते हैं ।

२३८—जग जीवन बढ़े = मसार में अधिक जीवित रहने से ।

अछत = जीते जी ।

नोट—रहीम के पुत्रों की मृत्यु उनकी जीवितावस्था में ही हो गई थी । मालूम होता है इसी से रहीम ने दीर्घ जीवन को अच्छा नहीं बताया है ।

२३९—सोय = सोता । सिखाय = शिक्षा देना ।

२४०—पलटत लगै न वार = विरुद्ध होते देर नहीं लगती ।

२४१—भिनुसार = सपेरा । सार = रजाई

२४३—माह मास लहि टेसुआ = माह में टेसु शोभा नहीं देते ।

इनका समय तो धार में है तभी इनका ब्याह कराया जाता है ।

मीन थल पर जाने से मर जाता है । संसार में स्थूल-भ्रष्टों की यही दशा होती है ।

२४४—निगुन हुजूर = मूर्ख शिरोमणि ।

कूर = कूर, फपटी, दुष्ट । विटप = वृक्ष ।

२४६—सीम = मर्यादा, हद ।

२४७—पुत्रोर = फटकना, सूप में फटक कर साफ करना ।

हलुकन = (हलुक) हलके । गरपु = (गरु) भारी । उदोर = इकट्ठा करना ।

२४८—टूटे = विगाड होने पर । पोहिये = पिरोइये ।

२४९—अधम वचन = पड़ये थोल । पस्यो = पहा-पूला, आनन्दित  
 का । नीरम = रस हीन ।

२५०—विमात = रस चलना

२५१—गुराइसि (गुर + आइसि) = बड़ों की आज्ञा, वृद्ध जनों की  
 आज्ञा ।

गादि = अत्यत दृढ़ ।

२५२—लसकरी = फाजी । सेह = साँग ।

जगीरें = इनाम में पाई हुई जागीर को ।

२५३—बरी = तड़ियाँ, मूँग आदि की ढाल घँटकर बनाई जाती  
 है । छोल = नमक । सरैगो = पूरा होगा ।

नोट—जगह-जगह भटकने की अपेक्षा मूल का आश्रय लेना  
 श्रेष्ठ है ।

२५४—खेर = कुशल, भलाई । मद पान = शराब पीना ।

२५५—विमात = आकात, चलाइ ।

२५६—गुन = गुण, रस्मी । यादि = बड़ा, गहरा ।

नोट—कुए की गहराई को मन की गभीरता से उपमा दी गई है ।

२६२—त्रियाधि = आपत्ति, दुःख । बेरी = बेची ।

२६३—गादे = कठिन ।

२६४—धोये बादर = वह बादल जो बरसाती नहीं होते, खाली ।  
 दरात = गर्जते हैं ।

२६५—चिन्होने नट को तमाशा करते देखा है वे जानते हैं कि  
 कहीं के छोटे से घेरे में होकर जिस तरह मोटा ताना करतबी नट शरीर  
 से ताल कर माफ निकल जाता है इसी तरह रहीम जी कहते हैं ४८  
 ताना का जरा सा दोहा छन्द भी एक कुण्डली है जिसमें होकर बड़े से  
 बड़ा अर्थ सही सलामत त्रिना उलझे निकल जाता है ।

जो कवि यद्दे से यद्दे गंभीर भावों को दोहे की छोटी कुहली सफाई के साथ निकाल सकते हैं वही कर्तवी नट की तरह श्रेय के भाग्य होते हैं ।

दोहा छन्द की प्र सा में कविवर रहीम की केसी अच्छी उक्ति है हिन्दी के छन्दों में दोहा छन्द का वही स्थान है जो संस्कृत में 'अनुष्टुप' का भार प्राकृत में 'गाथा' का है ।

२६६—रहीमजी कहते हैं कि दोहा ओर लाल यद्यपि छोटे होते परन्तु दोहे के रूप ( शब्द योजनादि ), कथा प्रसंग और सुन्दर पदों पर और लाल के रूप, कथा प्रसंग ( केसा हे, किम खान से निकला है किस-किमके पाग रह्य हे आदि ) तथा सुन्दर पहल पर जितनी ही टिप डालोगे उतनी ही छिपी हुई प्रियता नजर आवेगी और दोहा रत्न और मणिरत्न का छिपा हुआ मूल्य भी आप की नजरों में बढ़ता जायगा ।

कथानक = कथा प्रसंग । चार पद = सुन्दर पद, सुन्दर पहल  
किञ्चित् = छोटा । अलुप = अलोप, छुपा हुआ ।

नोट—१० २६६, २६७ के दोहों से रहीम की दोहा प्रियता प्रकट होती है ।

१६७—रहीम ने इस दोहे में तानमेन की प्रशंसा और तान की गुरुत्व किम युक्ति से वर्णन की है देखिये —रहीम कहते हैं कि ब्रह्मा ने इसी शेषनाग को फान नहीं दिये हैं क्योंकि वह जानते थे कि भविष्य में तान सेन पैदा होंगे । फल ही उनकी तान सुनकर शेषनाग सिर नहिला दे नहा तो सारा ससार ही उलट जाय । तान वही है जिसे सुनकर चराचर मस्त हो सिर हिलाने लगें ।

पाठक देखे, रहीम ने सीधे-सादे शब्दों में कैसा चमत्कार-पूर्ण भाव भर दिया है ।

## बरवै नायिका-भेद

दोहा न० १—सुख्यो न = नहीं जँचा, पसन्द न आया । विरच्यो =  
चा, थाया ।

दो० २—बेधरु = बेध करनेवाला, छेदनेवाला । अनियारे = अनीदार,  
नोङ्गार, नुकीले । इस दोहे में कवि ने बरवा छन्द की प्रशंसा की है ।

बरवा न० १—खोरि = दोष ।

२—मोती किनारी की साड़ी पहिने, बाल खोले, सुन्दरी इधर उधर  
घोच के साथ घूमती फिरती, लहंगों की तरह लहरा रही है । सुन्दरी के  
अग्रपट्टि में मनोमुग्धकारी लहरो की भी बहार है । विधुरे = फैले, छिड़के ।

३—नैन के कोरवा = नैन कोर । अहटाय = बजना, शब्द होजना ।

४—नवयौवना सुन्दरी के अग्रपट्टि पर कामदेव के विजय चिन्ह प्रकट  
लगा है अर्थात् आँसु में मँकपन और पयोधरो में उभार आ गया है ।

नवेलियहि = नवयौवना सुन्दरी । उकसन = उभरना, ऊँचे उठना ।

५—धौं = न जाने । दुपि दुखि उठइ = रह रह के दर्द हो उठता  
। एगि जनु जाय = मानो कुछ लग गया है, किसी प्रकार से चोट  
पा गई है ।

६—आँचक भाइ = एकपक आफर ।

गोइयवाँ = सरियाँ, सहेलियाँ ।

७—चूनि = चुनकर । घाय = रुचि, प्रेम । चुनगिया = साड़ी ।

८—नवल बचू पति से मिलने तो भाई है परन्तु जाँघों को मिलाकर  
आँधी से चिपका रखता है । उसे डर है कि वहाँ से उसके कुचो को छू न ले ।

९—चाहन = चाहना, प्रेम करना । चाहति = चाहती है ।

१०—प्राज्ञ नायिका रजनी के अंत में कोयल को धोल्ते सुनकर  
बदला गई । उसे भय हो गया कि प्रियतम से यह वियोग करावेगी, क्योंकि

वे यह जानते ही कि सबेरा हो गया, उठकर चले जाँयगे। इस कारण वह कहती हैं कि अरी सखी ! इतना सबेरे से गोलकर मेरे ताप को बरतना चाहती है—अरी ! मुझ पर दया करके एक घड़ी तो आर सुपचार रह। “करन लागे खोटी हा परेरु लाल चोटी के” इत्यादि में भी इसी भाव के उद्गार प्रकट किये गये हैं।

कोइलिया = कोयल। ताप = विरह-ताप। अलिया = मन्नी।

११—कृष्ण प्यारे की मुरली के भिन्न भिन्न रागा को सुनकर सुन्दरी प्रेम-मग्न हो रही है। मार्ग में खड़ी हुई न तो खड़े रहने का कष्ट अनुभव करती है और न आने जानेवालों के लिये मार्ग छोड़ने की उम्मीद सुघ है।

गनति न = नहीं समझती। खेद = दुख, कष्ट।

१४—चून्त = तोड़ते हुये। अँगियावा = अँगिया, चोली।

१५—सुगागा = तोता, सुगा। चुदार = चोट पहुँचानेवाली।

१६—नायिका पसीने पसीने हो रही है और उसके श्वाभ में भी कुछ वेग है। सामने से उमने अपनी सखी को आते देखा तो कारण छिपाने के लिये चट कहने लगी—मैं तेरे पास जल्दी जल्दी आ रही थी। देखो न पसीन-पसीने हो रही हूँ, साँस भी नहीं समाती ! सखी मैं तो थक गई !

हरवर = जल्दी जल्दी। भा = हुआ। पय-खेद = मार्ग का श्रम उससवा = जल्दी जल्दी श्वास लेना, हाँफना।

१७—नायिका सखी से कहती है कि आज मैं कुसुम का फूल लेने के लिये खेत जाऊँगी। वहन, खेत बड़ी दूर है और ढासी की छोरी जो मैं साथ जायगी, थकी निकम्मी है। अत आज खूब थककर घर लौटूँगी यह दिखाना चाहती है परन्तु असली कारण को छिपा कर।

कुसुमिआँ = कुसुम के फूल, इसमें काँटे होते हैं किसी जमाने में

हसुम रंग प्राप्त करने के लिये चेतों में घोया जाता जा । कूर = निकम्मी, मुक्त । प्रयोग—सुभद्र शरीर नीर चारी भारी भारी तहाँ सूरन उटाह कूर कादर डरत हैं । 'तुलसी'

१८—पाथ = जल । अमरया = आम का भाग ।

जंगो धन अमरैया = अमराई जाना आवश्यक है ।

१९—तोरेसि = तोड़कर ।

२०—बुताय = बुझा देना, गुल कर देना ।

दियवा = दिया । यारन = जलाने ।

२१—कोरवा = कोर ।

२२—हुमकत = गर्म के साथ पर रखती हुई ।

सुन्दरी मद-मग्न हाथी की तरह झूमती झामती इधर उधर नजर फकती मुमक्याती हुई जा रही है ।

२३—नायिका ऊँची अटालिका से कामातुर हो दार्ये आर थाये अखां विन्शियो को देखती है ।

२४—सास अपने पड़ोसी का ह में कह रही है कि मैं तो बड़ी दुखी हूँ क्योंकि मुझे नेवते जाना है, वह अकेली घर की रखवाली के लिये है और मग्न घर सुना है । वह का सुने घर में रहना ही उसकी इच्छा पूर्ति का धोतक है ।

२५—कोई पड़ोसिन नायिका में कह रही है कि ते दुलहिन ! तेरी ननद नेवते ओर सास मँके गर्द है तो क्या हजं ह ? तेरी सुध लेनेवाला और प्याग तो पास ही ह ।

सररिया = सुध लेनेवाला । पिय = प्रिय, प्यारा ।

२६—सूल = दुख । झरिगा = झर गया अर्थात् पत्रहीन हो गया ।

२७—जैमे जैमे गीष्म ऋतु का धधकता हुआ दावानल लता-कुञ्च निर्मिन् कुटीर का दहन कर रहा था वैसे ही वैसे तरणी के मर्म में इस

दहन को देख कर दुख बढ़ता था, क्योंकि दावानल लता-कुर्जा को जलाकर उसके सकेत-स्थाना को नष्ट कर रहा था ।

दहत = जला रहा हूँ । दवरिया = दावानल ।

कुञ्ज-कुटीर = लता निर्मित कुटियाँ ।

२८—करि अनुराग = अनुराग कर, प्रेम कर ।

२९—नायिका का ब्याह हो गया है । वह नई-नई ससुराल आई है इसीसे वह उदास बैठी रो रही है कि यहाँ प्रेमी से मिलना कैसे होगा । कोई घतुर पड़ोसिन इस रहस्य को समझकर सान्त्वना देती है कि “अभी ! दुल्हिन इस तरह रोकर प्राण न दे, तू अपना जी क्यों छोड़ करती है ? इस तेरी ससुराल में भी सघन कुञ्जों की कमी नहीं है । दूसरे तेरे घर में भी तो दूसरा कोई नहीं है ।”

जनि = मत । करि मन ऊन = छोड़ जी करना, उदास होना ।

३०—प्यारे कृष्ण की वंशी की ध्वनि कान में पड़ते ही नायिका का मन पल्लवित हो उठा अर्थात् मिलने की इच्छा करने लगा । परन्तु सहेट से वह वापस हो चुकी थी, अब चारम्बार फिर-फिरकर उसी ओर देखती है और मन में पछताती है कि मैं क्यों इतनी जल्दी वापस आ गई ।

सुमन = सुन्दर मन । सपात = पात-सहित अर्थात् पल्लवित होना, इच्छायुक्त होना ।

३१—अराम = वाग । लहेउ न काम = प्रीतम-सुख लाभ न किया ।

३२—अरसिया = शीशा ।

३३—कजवा = काम के लिये । आणसि साधि = पूरा कर आई ।

जुरवना = जूड़ा । दिइ = दड़, मजबूत ।

३४—जवकवा = महावर ।

३५—पति प्रेम-गर्विता नायिका सखी से कह रही है कि आज तो मुझे बड़ी शरम उठानी पड़ी—दूसरी स्त्रियों के पैरो में तो नाइन के हाथ

का महावर था इसमें किसी ने ध्यान नहीं दिया परन्तु भेटू नायिकाओं की दृष्टि मेरे पैरों में हटी ही नहीं ।

३६—खीर = क्षीण, चंद्रमा घटना बढ़ता है ।

मलिन = नीच, चंद्रमा कलंगी है ।

विप भैया = विप का भाई चंद्रमा आर विप नेना मसुद्र म निकले हैं ।

३७—रातुल = लाल । भृषि = टुभा । मुगडया = मूँगा । गिरम (नि + रम) = सूखा । परान = पत्थर । अधग्या = ओठ ।

नोट—मानिनी का उदाहरण अप्राप्त है ।

३८—टेसु = पलास, डाक । सँदेसवा = सँदेसा, चब्र ।

३९—नायिका से दो सखियाँ अट्टालिका पर चलने के लिये आग्रहपूर्वक अनुरोध कर रही हैं, परन्तु वह कहती है कि तुम दोनों क्यों इतना आग्रह करती हो । मुझे तो प्रियतम के बिना सूनी अट्टालिका म जाना न जाने क्यों अच्छा नहीं लगता ।

४०—मादा के घर में कोई बेलि लगी है जिमम फूल खिल रहे हैं । पति उसका घर नहीं है, बेलि के पुष्पों को देखकर उसकी विरहामि भङ्गनी है अत नैराश्य से गिन्न होकर कहती है कि ये बेलि ! तू जड़ सहित जलकर भस्म क्यों नहीं हो जाती । तेरे फूलों को देखकर मुझ विरहनी के कलेजे में शूल उठती है ।

शूल = पीड़ा ।

सूचना—परकीया प्रोपित-पतिका ओर गणिका प्रोपित-पतिव्य के उदाहरण अप्राप्त हैं ।

४१—सिप = शिक्षा । सीख = मानकर ।

४२—निचवइ जोइ = नीचे को देखती है । छिति = भूमि ।

एन = खोदती है ।



सुसुकति रोइ = सिसक सिसक कर रोती है ।

४३—पतिता नायिका पति को ऊँघते हुए देखकर भीठी सी बुदकी लेती हुई कहती है कि प्रियतम ! नींद के वश होने से आप की पगड़ी गिर गई ! आप को नींद आ रही है अच्छा हो आप थरोठे में पलंग बिछाकर सो रहे ।

पगरिया = पगड़ी । पवदहु = सो रहो ।

४४—पतिता नायिका पति के अपराधों को प्रकट न करती हुई उन्हें लज्जित करने के लिये पते की बातें कहती है —आप के ओठों में काजल और मस्तक में महावर लगा हुआ है सो जरा पोंछ डालिये और आप की छाती में यह माला के चिन्ह कहाँ से उपट रहे हैं ।

यिन गुन माल = बिना डोरी की माला । जावक = महावर ।

४५—नायिका ने पति को आते देख उठकर आँगन में ही स्वागत किया और साथ ही उस चतुरा ने आदर पूर्वक बैठने के लिये आसन दिया ।

अँगनैया = आँगन । उठि कै लीन = आगे बढ़कर स्वागत किया ।  
बैठक दीन = बैठने के लिये आसन दिया ।

४६—नायिका ने पति को वापस आया देखकर कहा कि प्रियतम ! पलंग पर लेट जाइये, मैं आप के पैर दबा दूँ जिससे रात में जगने के कारण जो नींद आप की आँखों में घन रही है वह दूर हो जावे ।

भीजउँ = दबा दूँ । निदिया = नींद ।

४७—नायिका कहती है कि जिसके प्रेम में फँसकर मैंने अपने आरम्भिय, स्नेही और अपना घर बाँट रखी छोड़ा, वह भी अपना न हुआ । यह बिल्कुल सच है कि अपना पति ही होता है ।

पिअरवा = पति । सँच पगर = बिल्कुल सच ।

४८—नायिका ने अपने प्रेमी के ओठ में काजल और मस्तक में

महावर देखकर मन ही मन कहा कि आर हुआ सो हुआ परन्तु निगोधी ने मणियों की माला भी गले में निकाल ली है ।

- तकि = देखकर ।

४०—सुन्दरी का अभी द्विरागमन होकर आया है अर्थात् अभी नई नई पति गृह में आई है आर पति से मिलते ही मान कर रंठी ह जिससे पति भी उन्मासीन हो गया है । परन्तु कुछ दिन पश्चात् जब नवोदा पर भी काम प्रभाव भरपूर पड़ा तो पछताने लगी कि मैंने क्यों मान किया, नाहक लड़ी ।

गमनयाँ = द्विरागमन ।

५०—सुन्दरी अपनी सखी से कहती है कि मैं बड़ी मूर्ख हूँ, मान रने में सारी रात बिताकर भोर कर दिया । सखी ने कहा सारी रात से मान ही में खीत गई, तभी अब यह नहीं मनाते हैं इसमें उनका या दोष ?

परलिउँ भोरि = सवेरा कर दिया । तेहिँ कडु खोरि = उनका क्या दोष ?

५१—पति आर पत्नी में कलह हो गया था । पति मनाते मनाते कि कर अत म लौट गया पर मैंने मान न छोड़ा अब पछताने से क्या ? पत्नी समय प्रीतम को छाती से लगाकर हृदय को ठंडा क्यों न किया ।

मनुहरिआ = मनुहार । हिम कर हीव = हृदय को ठंडा करना ।

५२—नायिका ने दूसरे से प्रेम करने के कारण नर्नद आर जिदानी से आर भी रौंधा आर उस प्रेमी से कलह भी कर लिया, अत अब पश्चात्ताप करती है कि जिसके लिये नर्नद आर जिदानी से शैर कर लिया—हाय !—अब प्रीतम को कल्लेजे से क्यों न लगाये रक्खा !—मनोमालिन्य क्यों कर लिया ।

विरोधवा = घैर । करेजवा = कल्लेजे से ।

५३—जिसने अनेक थार मुझे मणियों की मालाये गी होंगी, सखी !

मेरी मूर्खता तो देख, ऐमे प्रेमी से मैंने कलह कर लिया और अप्रसन्न हो बैठ रही । परिणाम यह हुआ कि वे भी रूठ होकर चले गये ।

बहुविरियाँ = बहुत बार ।

५४—सहेदवा = संकेत-स्थान ।

५५—कैलि-भवनवाँ = क्रीड़ा-स्थल ।

निकर = घेचैन । लै लै ऊँचि उससवा = लथी लथी सामे ले लेरू

५६—पूर = गद, तूफान, पूरा, बहुत ।

५७—अभिसरवा = नायक अथवा नायिका का संकेत ( पूर्वनिर्दिष्ट स्थान में गमन । बैरिनि = बैरियों के झुंड में ।

५९—जुग = दो । जाम = पहर । जमिनिया = राति । कडनि = किते । धों = न जाने । बिलमाय = बिलमाया, रोक रक्खा ।

६०—जोहति = जोहती, बाट देखती, रास्ता देखती ।

वेचेड = अपने को बेची । केहि = किस । हाट = बाजार ।

६१—भा भिनुसार = सबेरा हो गया । इतवार = विश्राम ।

६३—बेचारी नायिका एक तरफ तो प्रात काल तक इंतजार में बैर कर नींद के थपेड़े खा रही है और दूसरी तरफ धनी प्रेमी का लोभ भी नहीं छोड़ सकती । अत खीझकर कहती है कि सबेरे की नींद मुझे सता रही है परन्तु इस मूर्ख, पर धनी प्रेमी का अब तक कहीं पता नहीं ।

६४—हरूप = धीरे । दीठि बचाइ = निगाह बचाकर ।

६५—चितवनि दग दग = जरा से खटके से चौक पड़ती है और आँखें दरवाजे पर जा पहुँचती हैं ।

६६—उतरत कतवार—पति के आने में डेर है—अत बार बार पलंग पर से उतर कर देखती है ओर फिर जा बैठती है ओर सोचती है, क्या देर है ।

६७—गुरलोगवा = गुरुजा, घर के बड़े पूड़े । हाल = झट ।

७०—कहल न जान = बड़ा नहीं जाता है । रहत गदात मोनका = सुवर्ग भूषण बनवाते रहते हैं ।

हियै सिरात = हृदय को शांति मिल्दो है, हृदय शांत रहता है ।

७१—परनवा = प्राणो को ।

७२—चमोरवा = चमोर, इस पक्षी का प्रेम चन्द्रमा पर है अतः वरुण की ओर देखता रहता है ।

७३—नायिका मुग्धा है अतः उसमें लज्जा अधिक है इसी से सप्त सखियाँ उसे प्रियतम के पान लिवकर चलीं फिर भी मतवाले हाथी की तरह अकुन देकर अर्थात् जोरावरी गुदगुना गुग्नुना कर उसे लिये जा रही है ।

गुग्नुदवा = गोदना, हाथी को, अकुन देना, किसी कार्य के लिये बार बार जोर देना ।

७४—लाल अद्युअवा = लाल चमों से सजी हुई । अद्यवाना का अर्थ मचाना या बनाना है ।

७५—साहम गादि = दृढ़ हिम्मत वाली । पायेल = पैर में पहाने का आभूषण । डारेमि फादि = निकाल डाले ।

१०—जरतरिया = जरीदार । यसन = घस ।

८१—गान ( गमन ) = जाना ।

१०—ओवरिया = कोर्री ।

८३—फागुन केलि = फागुन छोड़कर अर्थात् होली के त्योहार का तैरस्कार करके ।

१४—नायिका का प्रेमी बड़े उम्रवाह में विदेश जाने के लिये तैयार हुआ । येचारी नायिका भी प्रियतम को जान हुए देखने के लिये अन्य-मनस्का होकर उसी रास्ते चलने लगी जैसे पनिहारी मार्ग चलती जाती है पर ध्यान मिर के घड़े पर रखती है ।

८५—सुमिरिनिपाँ = माला ।

८७—पाँरि = हयोदी ।

९०—जटित सुहीर = सुन्दर हीरो स जडा हुआ ।

९१—घनन घटकिया = चन्दन की चौकी ।

९२—घख ( चक्षु ) = आँखे ।

९३—गुरु मनवा = गुरु मान, मान के दो भेद हैं ( १ ) लघु ( २ ) गुरु ।

यारि = आत्र, घमक ।

९४—परयिनवा = प्रवीन चतुर ।

९६—अरिया = क्षत का अपभ्रंश ।

९७—सधवा = साधा, इच्छा करता हुआ । रहिगा जीव = दिल रह गया अर्थात् दिल ने साथ न दिया ।

९८—उच शब्द समवाय आर मिश्रण अर्थ में आता ह ।

१००—जोरि नयन = आँखें मिलाकर ।

१०२—घसी = मठली पकड़ने का काँटा ।

३—बझाय = बिँधाना, फँसाना ।

५—पलकिया = केश, घुँघरारे वाल, जुल्फ ।

१०३—ताको वोहि = उसको देखूँगी ।

ऐ ठल गइ अभिमनिया = अभिमानिन ऐ ठ कर चली गयी ।

१०४—नायक यातो ही यातो में नायिका को निमवण दे रहा है । वह कहता है आम के राग में अनेको कुज हैं जिनकी छाँह बड़ी ही नीतल है वहाँ कितनी ही कोयले आ आ कर लड़ती हैं आर फिर उड़ जाती हैं अर्थात् तेरे समान कोकिल-कंठी वहाँ अभिसार के लिये आती हैं ।

१०५—यह जानकर कि पास ही शृपमान-नदिनी चोर नामक

खेल खेल रही हैं नन्दकिशोर भी तुरन्त वहाँ आ राधिकाजी को छू कहने लगे कि लो छिपो में चोर बनता हूँ अर्थात् राधिकानी से प्दान्त में मिलने की तरकीब निकाल ली ।

१०७—नायिका स्वप्न में प्रियतम से मिल स्वप्न-सुख का आनन्द ले रही थी इतने में दासी ने आकर जगा दिया । घुरा हो उस दार्मी का । बेचारी नायिका का सुख ही नहीं छीना, धरन् विरहाग्नि को प्रज्वलित करके असीम दुख के गढ़े में दकेल दिया ।

सपनवाँ = स्वप्न में । आनि जगायेसि चेरिया = दासी ने आकर जगा दिया ।

१०८—नायिका के पति का चित्र उसकी चित्तसारी में टँगा है उसे देखकर उसकी विरहाग्नि बढती है । परन्तु क्या करे प्रियतम के आगे के दिनों को माला की तरह बार-बार फेरती हुई अवधि को येनकेनप्रकारेण बिता रही है ।

चित्तसरिया = चित्तसारी । ओधिवसेरवा = अवधि के दिन ।

१०९—नायिका विरह-संतप्त बँठी थी कि सखी ने बाहर से आकर कहा कि ऐ सखी तेरा प्रियतम परदेश से आ गया है । अरी ! उठकर शृङ्गार क्यों नहीं करती ?

११०—पति विरह-संतप्त नायिका भार परदेश से आया हुआ पति, जब दोनों एक जगह एकत्र हुए तो स्त्री पति के मुख की ओर इम प्रकार तृपित नेत्रों से देखकर रह गई जिस प्रकार चमोर पक्षी चन्द्रमा की ओर झूटक देखता रहता है ।

भे झूठोर = एकत्र हुये ।

१११—हेरति मुख मुसुकाति = शृंगार छटा को नायिका दार्शन में देखती है और मुसुकाती है ।

सखी नायिका को सिखावन देती है कि दालान में बँटकर आनन्द

लटो, प्रियतम के पेर दबाओ और प्रियतम को गरमी लगे तो पखा से हवा करो ।

छाकहु बहट्टि दुअरिया = दालान में बैठ कर छोको अर्थात् आनन्द लटो । मीढहु पाय = पैर दबाओ । विजन = विजना ।

११३—नायक और नायिका में किसी कारण कलह हो गया है । नायक ने भीतर का सेना छोड़ रक्खा है आर बाहर सोता है, जिसमे नायिका दुखी है । अतः सखी नायिका की ओर से उपालभ देती हुई कहती है कि यह क्या तमाशा कर रक्खा है ? इस तरह झगड़े होते ही रहते हैं । चलो अन्दर सोओ । पति भी इस संवाद को सुनकर मुसम्याने लगा, पर कहा कुछ नहीं । सुपके मे अपने लिये जो बिछौना बिछाया था उसे उठा दिया ।

११४—सखी कामदेव के धनुष की तरह भौंह चढाये हुए हँसती है और उपस्थित रमणियों के कुच-स्पर्श करके उन्हें छाती से लगाती है । अर्थात् पति-आलिङ्गन का नाट्य करके नायिका को हँसाती है ।

## मदनाटक

- ( १ ) बहति मरुति मन्दम् = मन्द मन्द हवा चल रही थी ।  
 शशि-कर = चन्द्र-किरण । वागी = सवार । विगत = नष्ट  
 मदन शिरसि भूय = कामदेव शिर पर सवार है अर्थात् पीड़ित  
 कर रहा है ।
- ( २ ) हर नयन-हुताश = शकर के तृतीय नेत्र की अग्नि ।  
 रति नयन-जलौधै = रति के नेत्रों के आँसू ।
- ( ३ ) हिम रतु = सर्दों का मौसिम
- ( ४ ) मनसि = मन में । नितान्तम् = अधिक । अन्धन  
 मनमथाद्री = कमोहीपित अगवाली ।

- १२—चनन = चन्दन । केवरिया = खिड़की । जोहाँ बाट = प्रतीक्षा  
करती हूँ, मार्ग देखती हूँ ।
- १३—चारो = चारा, उपाय ।
- १४—या = साथ, से । चसुन = चनु, आँख ।
- १५—कारी = पुर असर । कुल्फै = कष्ट ।
- १६—हस्त = हाथ ।
- १७—ध्रुति युग = दोनों कानों म ।
- १८—तरल = चञ्चल ।
- १९—कमनैत = घनुप धागी । चाँकुरी = टेढ़ी । सार = प्रभाव, असर







# सूची वर्णानुक्रम से

प्रारम्भिक

	पद्य-संख्या
अधम वचन से को फल्यो	२४९
अनुचित उचित रहीम लघु	२१२
अनुचित वचन न मानिये	२५१
अब रहीम चुप करि रहा	१८४
अब रहीम मुसफिल परी	२६३
अमरघेलि त्रिन मूल केँ	३
अमृत ऐसे वचन में	२३३
अरज गरज मानै नहीं	०२४
असमय परे रहीम कह	१९०
आदर घटे नरेस दिग	८३
आप अहै तो हरि नहीं	२६
आपु न काहू काम के	१२६
आयत काज रहीम कह	६७
उरग तुरँग नारी नृपति	२४०
ऊगत जाही किरन सो	२०५
एकै साथे सब साथै	२५४
बोटे कर सतसग	१७९
अंजन देहु तो किरकिरी	२०
अंड न दौड़ रहीम कह	१३१
अन्तर दाव लगी रहै	१२७
कदली मीप भुजग मुख	१७०
कमला धिर न रहीम कह, यह जानत	२१

कमला धिर न रहीम कह, लखत	२७
करत निपुनई गुन धिना	२४४
करम हीन रहिमन लखौ	२३७
कह रहीम या जगत नैं	११०
कह रहीम सपति मगै	१६१
कह रहीम धन घढ़ि घटे	१३४
कहा करौ बैकु ठ लै	५९
कहु रहीम केतिक रही	३९
कहु रहीम कैसे निभैं	१८०
कहु रहीम कैसे बनै	१४४
कागद को सो पूतरा	४४
काज परे कहु और है	१२५
काम न काहु आवही	५
काह कामरी पामरी	१९६
केहि कै प्रभुता नहि घटी	१२
कोउ रहीम जनि काहु के	१९४
सर्च बढो रोजी घटी	१४२
खीरा सिर धरि काटिये	९३
खैंचि चढनि ढीली दरनि	३३
खैर खून खौसी खुमी	२५५
गरज आपनी आप सो	२४५
गहि सरनागत राम कै	१२
गुन ते लेत रहीम जन	२५९
गुस्ता फरै गहीम कह	२१९
चरन छुये मस्तक छुये	४२
चारा प्यारा जगत म	१३६

चियहूट में रमि रहे	१९३
छार उछारत सोस पर	१४०
छिन्ना बड़ेन फहँ चाहिये	२१६
छोट काम बड़े करे	१३०
छोटेन साँ सोहँ बड़े	२१७
जद्यपि अवनि अनेक हैं	११७
जय लग चित्त न आपने	१९८
जल्हि मिलाय रहीम ज्यो	१०४
जहाँ गाँठि ताहँ रम नहँ	११२
जानि अनीती जे पर	२३९
जाल परे जल जात बहि	१६७
जिहि नम मर पजर कियो	१४७
जे गरीब पर हित करे	२००
जे रहीम विधि बढ कियो	१५९
ज मुलगे से सुझि गये	६०
जेहि अंचल दीपक दुज्यो	१८८
जेहि रहीम तन मन लियो	१६९
जैसी परँ मो महि रहँ	१९५
जो अनुचित कारी तिहँ	४९
जो घर ही म घुमि रहँ	२३६
जो पुरपारथ ते बहँ	७४
जो बड़ेन फहँ लघु फहँ	२०१
जो रहीम उत्तम प्रकृति	१७७
जो रहीम ओछो बहँ	२२४
जो रहीम करिगो हुतो	१
जो रहीम गति नीप के, कुल कपूत के सोय	१

जो रहीम गति दीप कै, मुन सपूत कै सोय	१३८
जो रहीम तनु हाथ हं	३८
जो रहीम पग नर परै	२३०
जो रहीम भावी कहूँ	१४५
जो रहीम होती कहूँ	१४६
जो विषया संतन तजी	१५३
ज्यो नाचति फटपूतरी	१५२
ज्यो रहीम गति दीप ने	३६
दूटे सुजन मनाइये	२४३
डर धारिम डर परम गुरु	२६८
तनु रहीम हँ कर्म यस	२४
नव ही लग जीयो भलो	७०
तरुवर फल नहिँ खात हँ	६४
तेहि प्रमान चलियो भलो	९०
नै रहीम अत्र कान हँ	४
तँ रहीम मन आपुनो	१९
थोथे वादर फार के	२६४
दादुर मोर किसान मन	११९
दिभ्य दीनता के रसहिँ	१३
दीन लपै सब जगत कहँ	९
दीरघ दोहा अर्थ के	२६
दुख नर सुनि हौंसी करें	१
दुरदिन परे रहीम कह, दुरथल जयत भागि	१
दुरदिन परे रहीम कह, बडेन किये घटि काज	६
दुरदिन परे रहीम कह, भूलत सय पहिचान	१८५
देनहार फोउ ओर हं	१९५

धन धोरो इग्जत यदी	८६
धन दारा भर सुतन सों	७५
धनि रहीम गति मीन के	१६८
धनि रहीम जल पक कहें	९२
नहि रहीम कछु रूप गुन	११८
नात नेह दूरी भली	१४१
नाद रीझि तन देत मृग	७१
निज कर क्रिया रहीम कह	१४९
नैन सलोने अघर मधु	५३
पन्नगत्रेलि पतिव्रता	८८
परि रहियो मरियो भलो	३२
पसरि पल अपहि पितहि	५५
पात-पात कर सोंचिबो	७५३
पावम देखि रहीम मन	११४
प्रीतम छवि नैनन बसी	५८
पूरप पूजे देवरा	१८१
प्रेम-पथ ऐसो कठिन	९९
परजी साह न हुइ मकै	७१४
यह माया कर दोष यह	८७
बढ़े नीन कर दुख सुने	२०७
बढ़े पेट के भरन में	१२३
बढ़े बढ़ाई ना करै, बढ़े न बोलै बोल	७०३
बढ़े बढ़ाई ना करै, लघु रहीम इतराइ	२०९
बत रहीम धनाढ्य धन	१३५
बसि कुसंग चाहत कुसल	१७५
बौकी चितवन चित गडी	५४

बिगरी घात वनै नहीं	२२१
विधना यह जिय जानि कै	२६७
त्रिन्दु में सिधु समान	१
विपति भये धन ना रहे	१९१
भजउँ तो काको मैं भजउँ	२७
भलो भयो धरते दुख्यो	८५
भावी ऐसी प्रबल है	१५८
भावी या उनमान कै	१५१
भीत गिरी पाखान कै	१६०
भूप गनत लघु गुनिन कहँ	९८
मथत मथत माखन रहे	१६५
मनमिज माली कै उपज	४१
मनि मानिक महँगे किये	११
मन्दन के मारेहु गये	९६
मानसरोवर ही मिलै	७६
मान सहित विष खाय कै	२४२
माह मास कर भिनुसरा	२४३
माह मास लहि टेसुआ	१६३
माँगे घटत रहीम पद	१६
माँगे मुकरि न को गयो	१०१
मीन काटि जल धोइये	१७१
मुकुता कर करपूर कर	१२५
मूढ़ मडली में सुजन	२५
यह रहीम निज संग है	२२
यह रहीम मानै नहीं	६
या ते जान्यो मन भयो	

ये रहीम दर दर फिरै	७२
ये रहीम फीके दुआ	२३२
या रहीम गति बदेन कै	२०६
यो रहीम जग मारियो	१२
यो रहीम तनु हाट म	३७
यो रहीम सुख दुख सहत	२०२
यो रहीम सुख होत है	६८
— धन व्याधि विपत्ति में	४
रहिमन भति मत कीजिये	९१
रहिमन अपन गोत कहँ	६९
रहिमन अब वे विरल कहँ	२५६
रहिमन असमय के परे	१९२
रहिमन आटा के लगे	२५७
रहिमन उजली प्रकृति कहँ	१७६
रहिमन उतरे पार	४१
रहिमन एक दिन वे रहे	६३
रहिमन ओछे नरन ते	२४१
रहिमन ओछे संगते	१७३
रहिमन अँसुवा नैन दरि	८९
रहिमन कठिन चिताहु ते	१२८
रहिमन कअहुँ बदेन के	२०२
रहिमन करि सम गल नहीं	१३९
रहिमन कीहीं प्रीति	३१
रहिमन कुटिल कुष्टार ज्यों	९४
रहिमन फोज का करे	२०
रहिमन गोजो ऊग्य म	१०६



रहिमन खोटी आदि कै	२२३
रहिमन गडरी धूर कै	४३
रहिमन घरिया रहँट कै	२२८
रहिमन चाक कुम्हार कर	११७
रहिमन चोट सुतीर कै	५१
रहिमन छोटे नरन से	२११
रहिमन जग जीवन बदे	२३८
रहिमन जहाँ रहियो चहे	२२५
रहिमन जिह्वा बावरी	१८२
रहिमन जेहि के बाप कर	२३
रहिमन जो तुम कहत ही	१७१
रहिमन तय लगि ठहरिये	८०
रहिमन नीन प्रकार ते	२६०
रहिमन थोरे दिनन कहँ	१३१
रहिमन दानि दरिद्रतर	७३
रहिमन देखि बडेन कहँ	२१८
रहिमन धागा प्रेम कर	१०१
रहिमन धोरे भाव मे	११
रहिमन निज मन कै विथा	२२
रहिमन नीचन सग बसि	१७
रहिमन नीच प्रसग ते	१७
रहिमन नीर पत्थान	११
रहिमन पर उपकार के	६
रहिमन पानी राखिये	७
रहिमन प्रीति न कीजिये	१०
रहिमन प्रीति सराहिये	१८

रहिमन पेटे सों कहत	१२१
रहिमन थहरो बाज	१२४
रहिमन बहु भेषज करत	६
रहिमन यात भगाय कै	२
रहिमन विगरी आदि कै	२१५
रहिमन बिपदा हू भली	१८३
रहिमन ब्याह बियाधि है	२६२
रहिमन भेषज के क्रिये	४०
रहिमन मन महाराज के	५०
रहिमन मनहि लगाइ कै	२८
रहिमन मारग प्रेम कर	१००
रहिमन माँगत यदेन कै	१६४
रहिमन मै या पेट मो	१२०
रहिमन मोहि न सुहाय	७५
रहिमन यह तन सूष है	२४७
रहिमन यह न मराहिये	१०७
रहिमन यहि ससार में सब दुख	२२०
रहिमन यहि संसार में सब सों	२६१
रहिमन याचकता गहे	१६२
रहिमन रहियो वॉ भलो	७९
रहिमन रहिला कै भली	७७
रहिमन राज सराहिये	९७
रहिमन राम न उर धरै	१
रहिमन रिस कहँ छाँड़ि कै	११
रहिमन रिस सहि तजत रहि	११
रहिमन लाव भली करहु	११

रहिमन वहाँ न जाइये	१०८
रहिमन वित्त अधर्म कर	२३५
रहिमन विद्या बुधि नहीं	१५८
रहिमन वे नर मर चुके	१६१
रहिमन सुधि मत्र ते भली	१२९
रहिमन मो न कटू गनै	५६
रहिमन हम तुम सो	१८
राम नाम जान्यो नहीं, जान्यो सदा	१०
राम नाम जान्यो नहीं, भइ पूजा	१४
रीति प्रीति सत्र सो भली	२३४
रूप कथानक चारूपद	२६६
रूप रहीम विलोक्तहिँ	६२
लिखी रहीम लिखार में	१४८
घरु रहीम कानन वसिय	८४
वहै प्रीति नहि रीति वह	१०९
विरह रूप घन तम भयो	५०
वे रहीम नर धन्य हैं	६५
सदा नगारा कूच कर	४७
सत्र कहँ सत्र कोऊ करे	१११
सत्र कहावँ लसकरी	२५२
ममय दसा कुल देखिकै	
समय परे ओछे वचन	१८८
ममय लाभ सम लाभ नहि	९१
सग्वर के खग एक से	१५५
सर सूखे पछी उड़्यँ	१४३
ससि के मीतल चाँदनी	१५४

ससि सकोच साहस सलिल	२४६
स्वार्थ रूचत रहीम कह	१९२
स्वामह तुरिय जु उच्चरै	३०
साधु सराहे साधुता	२२१
सीत हरत तम हरत नित	१५६
सौदा कगे सो करि चलहु	४६
सतत संपतिवान काँ	७
सपति भरम गँवाइ कै	८१
हरि रहीम पेसी करी	३५
द्वित अनहित रहिमन करै	२५०
होत कृपा जो वदेन कै	२१३
होय न जाकर छाँह दिग	२१०





